अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 23, 16-31 जुलाई 2020

“साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नही, बल्कि उसके आगे चलने वाली सच्चाई है।

लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है,वह लेखक नहीं है।”

- प्रेमचंद

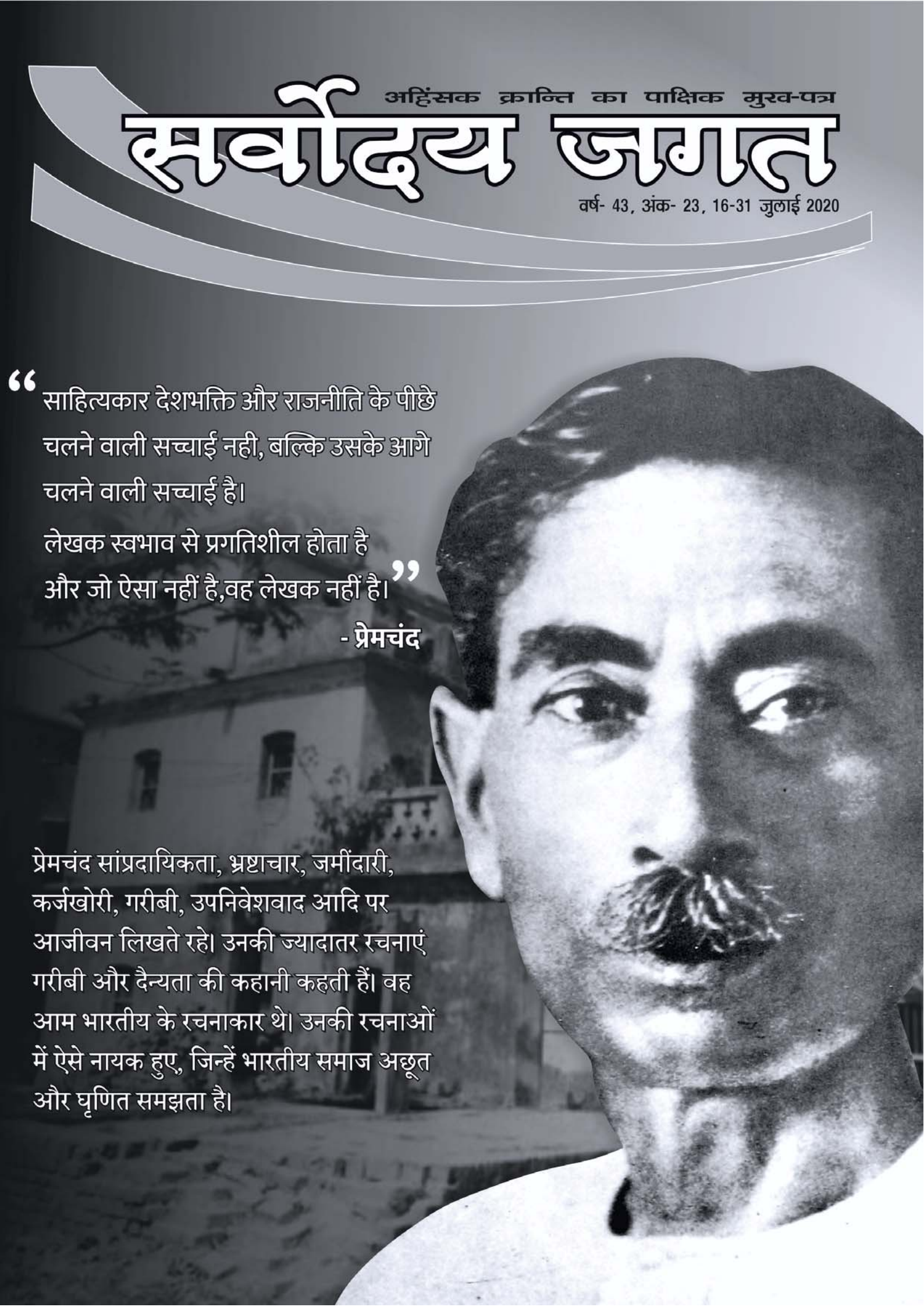

प्रेमचंद सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद आदि पर आजीवन लिखते रहे। उनकी ज्यादातर रचनाएं गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती हैं। वह आम भारतीय के रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में ऐसे नायक हुए, जिन्हें भारतीय समाज अछूत और घृणित समझता है।

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 43, अंक : 23, 16-31 जुलाई 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. जल, जंगल और जमीन, हो गांव के... 3
3. आपातकाल, संघर्ष और सबक... 4
4. गलवान से बाहर खतरे और भी बड़े हैं... 7
5. विस्तारवाद के बिना राष्ट्रवाद जीवित... 8
6. एक रियल स्टोरी... 9
7. रेलवे को निजी हाथों में सौंपा जाना देश... 11
8. जब प्रेमचंद ने गांधी का भाषण सुनकर... 13
9. सभ्यता का रहस्य... 14
10. एक भारत, श्रेष्ठ भारत!... 17
11. सर्वोदय आंदोलन और आगे की दिशा... 18
12. सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी... 19
13. कविताएं... 20

संपादकीय

बायकाट एवं गांव की आत्मनिर्भरता

चीन के सामानों के बायकाट की मुहिम से देश भर में एक माहौल बना है। लोगों में यह विचार स्थापित हो रहा है कि हम जितना ज्यादा दूसरों पर निर्भर करेंगे, उतना अधिक वे हमारी निर्भरता का दोहन करने की स्थिति में रहेंगे, उनके पास बांह मरोड़ कर हमें झुकाने की शक्ति रहेगी। डिजिटल क्षेत्र में जिसका दबदबा होगा, वह पूरी संचार व्यवस्था पर नियंत्रण करेगा। हमारे कम्यूनिकेशन लाइन को ब्लाक करने की क्षमता उसके पास हो सकती है। आज की युद्धनीति में इसका बहुत महत्त्व है।

इसी प्रकार एक दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अन्न सम्प्रभुता का है। बहुत पुरानी कहावत है कि यदि आप खाद्यान्न पर नियंत्रण बना लें, तो लोगों पर नियंत्रण बन जायेगा। आज दुनिया में कृषि-पूंजी तथा औद्योगिक कृषि पर जिन कारपोरेट घरानों का नियंत्रण है, वे दुनिया भर की अन्न उत्पादन तथा अन्न वितरण व्यवस्था पर भी नियंत्रण बढ़ाते जा रहे हैं। मोन्सान्टो और बायर के एक हो जाने के बाद विश्व भर में बीज और कीटनाशक बाजार पर इनका लगभग एकाधिकार बन गया है।

आप कल्पना करें कि जीन परिवर्तित बीज (Genetically Modified Seeds या G.M. Seeds) के ऊपर निर्भर होने पर खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य सम्प्रभुता का क्या होगा। जी.एम. बीज से पैदा हुई उपज से बीज नहीं पाया जा सकेगा। अर्थात हर बार नये जी. एम. बीज को खरीदना होगा। इसी प्रकार उर्वरक एवं कीटनाशक पर पूर्ण निर्भरता के बाद खेती एवं खाद्यान्न वैश्विक कृषि पूंजी के शिकंजे में फंस जायेंगे। और तब स्वदेशी खेती की ओर लौटना भी संभव नहीं होगा। इसलिए यह समझना होगा कि वर्तमान औद्योगिक कृषि जो वैश्विक कृषि पूंजी द्वारा संचालित है, उसके मकड़जाल में फंसने का अर्थ देश की सुरक्षा एवं संप्रभुता को खतरे में डालने वाला होगा। स्वदेशी खेती एवं अन्न संप्रभुता ही राष्ट्र की संप्रभुता को बचाये रखने का आधार बनेगी।

इसके कुछ अन्य पहलू भी हैं, जिनसे सावधान रहने की जरूरत है। वैश्विक कृषि पूंजी द्वारा कृषि तथा इससे जुड़े क्षेत्रों में शोध के लिए शोध संस्थानों को संचालित किया जा रहा है। इन शोध संस्थानों के वैज्ञानिक नये बीजों के आविष्कार को विज्ञान की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जो जी. एम. बीज का विरोध करते हैं, उन्हें विज्ञान विरोधी करार देते हैं। सवाल विज्ञान बनाम विज्ञान विरोधी का नहीं है। सवाल यह है कि हम वैश्विक कृषि पूंजी नियंत्रित खेती चाहते हैं या स्थानीय समुदाय नियंत्रित खेती। क्योंकि इनसे जुड़ा एक वृहत्तर सवाल भी है। वह यह कि प्राकृतिक संसाधनों पर वैश्विक पूंजी का नियंत्रण स्वीकार्य होगा या इन्हें स्थानीय समुदाय के नियंत्रण में रखना, हमारी संप्रभुता एवं आत्मनिर्भरता के लिए जरूरी है। चीन के सामानों का बायकाट कर हमने यही स्थापित किया है कि मुक्त व्यापार या अनियंत्रित बाजार की अपेक्षा हम आत्मनिर्भरता तथा संप्रभुता को प्राथमिकता देंगे।

राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार विविधतापूर्ण स्थानीय समुदाय नियंत्रित खेती की ओर बढ़कर ही हम निर्यात-प्रेरित खेती से बच सकेंगे। क्योंकि निर्यात-प्रेरित खेती ही किसानों को ऐसे ऋण के जाल में फंसाती है कि वे आत्महत्या तक को मजबूर हो जाते हैं।

एक अन्य पक्ष भी है। भोजन के वैश्वीकरण ने जंक-फूड एवं बीमारी को बढ़ावा दिया है। रसायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक के अतिशय उपयोग वाली खेती ने मिट्टी (मृदा), स्वास्थ्य, नदियों एवं जलस्रोतों को बुरी तरह नुकसान पहुंचाया है। इकालॉजी, विशेषकर कृषि इकालॉजी एवं समुदायों को नष्ट करने में इनकी बड़ी भूमिका रही है। इसलिए यह सवाल भी उठाना होगा कि हमें स्वास्थ्यवर्धक भोजन प्रदान करने वाली खेती चाहिए या जी. एम. बीज आधारित खेती। जो खेती हमारी कृषि संप्रभुता को खत्म करने का माध्यम बने, उसे प्रारंभ से ही अस्वीकार करना होगा।

एक नयी दिशा में बढ़ना होगा, जिसमें भूमि, जल, जंगल, बीज, टेक्नोलॉजी एवं शोध ये सब स्थानीय समुदाय के स्वामित्व के अंतर्गत आ जायें। स्थानीय समुदायों को सक्षम बनाने की दिशा में बढ़कर ही हम आत्मनिर्भर गांव के लक्ष्य की ओर बढ़ सकेंगे तथा अंततः आत्मनिर्भर गांव ही राष्ट्र की संप्रभुता का आधार बनेंगे। तब दुनिया की कोई व्यापार नीति हमें कमजोर नहीं कर सकेगी। **–बिमल कुमार**

अध्यक्ष की कलम से

जल, जंगल और जमीन, हो गांव के अधीन

गांव की जमीन गांव की, सरकार की नहीं

❑ महादेव विद्रोही

भारत सरकार ने पिछले दिनों कोयला ब्लाकों की ऑनलाइन नीलामी की प्रक्रिया शुरू की है। झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल में इसका जोरदार विरोध हो रहा है। अनेक मजदूर संगठन इसके खिलाफ भूख हड़ताल पर चले गये हैं। आश्चर्य तो यह है कि भाजपा का मजदूर संगठन भारतीय मजदूर संघ भी सरकार के इस निर्णय का खुलेआम विरोध कर रहा है। बावजूद इसके सरकार के कानों पर जूं नहीं रेंग रही है और वह कोयला खदानों को निजी हाथों में सौंपने के लिए आमादा है। केन्द्र सरकार के इस निर्णय के खिलाफ झारखंड की हेमंत सोरेन सरकार सर्वोच्च न्यायालय में गयी है। झारखंड में 103 किलोमीटर क्षेत्र में 22 बड़े कोयला खदान हैं। एक अनुमान के मुताबिक इसमें 386 करोड़ टन कोयले का भंडार है। इसके निजीकरण के कई विपरीत परिणाम आयेंगे। इसमें सबसे ज्यादा खतरा आदिवासियों का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाने का है। साथ ही खनन के कारण उनकी उर्वर भूमि भी बंजर हो जायेगी।

कोयला खदान मुख्य रूप से आदिवासी क्षेत्रों में है, जो पांचवीं और सातवीं अनुसूची तथा 'पेसा' (PESA) अधिनियम 1986 के अंतर्गत आते हैं। इसके अनुसार परियोजना के लिए जनजातीय अनुसूची परिषद तथा ग्रामसभाओं की सहमति ली जानी चाहिए। पर इन सारे कानूनों को ताक पर रखकर केन्द्र सरकार ने उद्योगपतियों को फायदा पहुंचाने के लिए यह कदम उठाया है। इसका हर स्तर पर विरोध किया जाना चाहिए। ज्ञात हुआ है कि छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा विरोध करने के कारण कई कोयला खदानों को नीलामी की सूची से बाहर कर दिया गया है। क्या हमें वह दिन भी देखना पड़ेगा, जब पूरे देश को निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिया जायेगा? यदि निजीकरण ही रास्ता है, तो क्यों न भारत सरकार को भी निजी कंपनियों के हाथों में सौंप दिया जाय?

सर्वोच्च न्यायालय ने वर्षों पहले अपने एक फैसले में कहा है कि सरकार प्राकृतिक संसाधनों की ट्रस्टी है, मालिक नहीं। लगता है कि केन्द्र सरकार ने इसे ताक पर रख दिया है और अपने को प्राकृतिक संसाधनों का मालिक मानते हुए रोब-ब-रोज निजी कंपनियों के लिए मार्ग प्रशस्त करती जा रही है। अभी पिछले दिनों में सरकार ने कई सार्वजनिक उपक्रमों को एक-एक कर निजी हाथों में सौंपना शुरू किया है, जिसमें सोने का अंडा देने वाली इंडियन ऑयल तथा भारत पेट्रोलियम जैसी कंपनियां भी शामिल हैं।

यात्रियों को चूस रही भारतीय रेल

11 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का रेल में आधा टिकट लगने का नियम था। अभी कुछ वर्ष पहले इसमें परिवर्तन करके सीट चाहने वाले सभी बच्चों से पूरा किराया वसूला जा रहा है। लॉकडाउन के बाद शुरू हुई ट्रेनों में वरिष्ठ नागरिकों से भी पूरा किराया लिया जा रहा है। तालाबंदी के कारण सभी नागरिकों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी है। ऐसे में होना तो यह चाहिए था कि किराये में छूट दी जाती, इसके विपरीत पहले से मिल रही छूट को भी समाप्त करना रेल विभाग की नफाखोरी की प्रवृत्ति और क्रूरता दर्शा रहा है।

रेल मंत्रालय बीच-बीच में कहता रहा है कि भारतीय रेल के निजीकरण की कोई योजना नहीं है, लेकिन इस बीच रेल मंत्रालय द्वारा 100 से अधिक गाड़ियों को निजी ऑपरेटरों द्वारा संचालित करवाने का निर्णय लिया गया है। इसका मतलब यह है कि इन गाड़ियों में किसी तरह की रियायत तो नहीं ही मिलेगी, उल्टे भारतीय रेल की गाड़ियों की तुलना में अधिक किराया भी वसूला जायेगा। इसके पहले भारतीय रेल ने कानपुर, हबीबगंज और हावड़ा आदि देश के महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशनों को भी निजी हाथों में सौंप दिया है।

यदि भारत सरकार को लगता है कि निजीकरण ही विकल्प है, तो क्या वह पूरे भारतीय रेल को निजी हाथों में सौंपने की योजना बना रही है? दुनिया के विकसित देशों में रेलों का संचालन सरकार स्वयं ही करती है। रेल का सामाजिक और सामरिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है, ऐसे में इसे सिर्फ मुनाफे के लिए निजी कंपनियों के हाथों में सौंपना सरकार की नाकामी है।

कुछ साल पहले अनिल अंबानी के नेतृत्व वाली रिलायंस कंपनी को नयी दिल्ली से लेकर इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे तक मेट्रो ट्रेन चलाने की अनुमति प्रदान की गयी थी। काम शुरू भी हुआ, लेकिन एक साल के बाद पिलरों में दरार पड़ गयी और अंबानी ने हाथ खड़े कर दिये। फिर इसे दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन को सौंपा गया और आवश्यक मरम्मत के बाद कॉरपोरेशन सफलतापूर्वक इसका संचालन कर रहा है। क्या सरकार इससे कोई सबक लेगी?

लोकसेवकों और सर्वोदय मित्रों का नवीनीकरण

सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यसमिति के निर्णय के अनुसार कोविड और तालाबंदी के कारण लोकसेवकों तथा सर्वोदय मित्रों के नवीनीकरण की अवधि एक महीना बढ़ा दी गयी है। अब नवीनीकरण की सूची और शुल्क 31 अगस्त 2020 तक स्वीकार किये जायेंगे। शुल्कांशों का विनिमय इस प्रकार होगा-

लोकसेवक : जिला सर्वोदय मंडल 10
प्रदेश सर्वोदय मंडल 10
सर्व सेवा संघ 10

सर्वोदय मित्र : जिला सर्वोदय मंडल 4
प्रदेश सर्वोदय मंडल 4
सर्व सेवा संघ 2

नवीनीकरण की सूची तथा शुल्कांश संबंधित सर्वोदय मंडलों द्वारा ही स्वीकार किये जायेंगे।

नये लोकसेवक तथा सर्वोदय मित्र

नये लोकसेवक तथा सर्वोदय मित्र कभी भी बनाये जा सकते हैं। लोकसेवक फार्म पर अनुमोदक के रूप में ऐसे दो लोकसेवकों का हस्ताक्षर अनिवार्य है, जो पिछले दो वर्षों से लगातार लोकसेवक हों। ❑

आपातकाल, संघर्ष और सबक

❑ जयशंकर गुप्त

गत 25-26 जून को आपातकाल की 45वीं बरसी मनाई गयी. इस साल भी पिछले 44 वर्षों की तरह आपातकाल के काले दिनों को याद करने, इसी बहाने इंदिरा गांधी के 'अधिनायकवादी रवैये' को कोसने की रस्म निभाने के साथ ही, लोकतंत्र की रक्षा की कसमें खाई गयीं. ऐसा करने वालों में बहुत सारे वे 'लोकतंत्र प्रहरी' भी हैं, जिनमें से कइयों ने अपने संगठनों सहित आपातकाल में सरकार के सामने घुटने टेक दिए थे या फिर वे, जो आज सत्तारूढ़ होकर अघोषित आपातकाल के जरिए लोकतंत्र और संवैधानिक संस्थाओं के साथ कमोबेस वही सब कर रहे हैं, जिनके लिए हम सब इंदिरा गांधी और उनके आपातकाल को कोसते रहे हैं. वाकई, आपातकाल और उस अवधि में हुए दमन-उत्पीड़न और असहमति के स्वरों और शब्दों को दबाने के प्रयासों को आज भी न सिर्फ याद रखने, बल्कि उनके प्रति चौकस रहने की भी जरूरत है, ताकि देश और देशवासियों को दोबारा वैसे काले दिनों का सामना नहीं करना पड़े और भविष्य में भी कोई सत्तारूढ़ दल और उसका नेता वैसी हरकत की हिमाकत नहीं कर सके, जैसी तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 25-26 जून 1975 की दरम्यानी रात की थी.

आपातकाल की पृष्ठभूमि

इंदिरा गांधी ने देश को आपातकाल के हवाले क्यों किया? 1971 के आम चुनाव में भारत-पाकिस्तान के बीच युद्ध में भारतीय सेना के हाथों पाकिस्तान की शर्मनाक शिकस्त और पाकिस्तान से अलग बांग्लादेश के निर्माण के साथ ही बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवी पर्स की समाप्ति जैसे अपने लोकलुभावन फैसलों पर आधारित गरीबी हटाओ के नारे के साथ लोकप्रियता के चरम पर पहुंच कर प्रचंड बहुमत के साथ सत्तारूढ़ हुईं श्रीमती गांधी ने अपने सरकारी प्रचारतंत्र और मीडिया का सहारा लेकर आम जनता के बीच अपनी गरीब हितैषी और अमीर विरोधी छवि बनाई थी. लेकिन तभी 12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा का ऐतिहासिक फैसला और उसके साथ ही शाम को गुजरात में कांग्रेस को सत्ता से बेदखल करने वाला विधानसभा के चुनाव का नतीजा आ गया. जस्टिस सिन्हा ने अपने ऐतिहासिक फैसले में रायबरेली से श्रीमती गांधी के लोकसभा चुनाव को चुनौती देने वाली समाजवादी नेता राजनारायण की याचिका पर फैसला सुनाते हुए श्रीमती गांधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया. उनकी लोकसभा सदस्यता रद्द करने के साथ ही उन्हें छह वर्षों तक चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य भी घोषित कर दिया. 24 जून को सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी इस फैसले पर मुहर लगा दी गयी. हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें प्रधानमंत्री बने रहने की आंशिक राहत दे दी थी. वह लोकसभा में जा सकती थीं, लेकिन वोट नहीं कर सकती थीं. उधर उनके पद त्याग नहीं करने की स्थिति में अगले दिन 25 जून को दिल्ली के ऐतिहासिक रामलीला मैदान में संपूर्ण क्रांति आंदोलन का नेतृत्व कर रहे लोकनायक जयप्रकाश नारायण एवं सम्पूर्ण विपक्ष ने अनिश्चितकालीन देशव्यापी आंदोलन का आह्वान किया था. मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में लोक संघर्ष समिति गठित कर 28 जून से इंदिरा गांधी के त्यागपत्र देने तक देशव्यापी आंदोलन-सत्याग्रह शुरू करने का फैसला हुआ था. इसी मैदान में जेपी ने राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की मशहूर कविता की पंक्ति-'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है,' का उद्घोष किया था. जेपी ने अपने भाषण में कहा था, ''मेरे मित्र बता रहे हैं कि मुझे गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि हमने सेना और पुलिस को सरकार के गलत आदेश नहीं मानने का आह्वान किया है. मुझे इसका डर नहीं है और मैं आज इस ऐतिहासिक रैली में भी अपने उस आह्वान को दोहराता हूं ताकि कुछ दूर, संसद में बैठे लोग भी सुन लें. मैं आज फिर सभी पुलिस कर्मियों और जवानों का आह्वान करता हूं कि इस सरकार के आदेश नहीं मानें, क्योंकि इस सरकार ने शासन करने की अपनी वैधता खो दी है.''

लेकिन बाहर और अंदर से बढ़ रहे राजनीतिक विरोध और दबाव से निबटने के नाम पर श्रीमती गांधी ने पदत्याग के लोकतांत्रिक रास्ते को चुनने के बजाय, अपने छोटे बेटे संजय गांधी और वरिष्ठ अधिवक्ता एवं पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे जैसे कुछ खास सलाहकारों से मंत्रणा के बाद 'आंतरिक उपद्रव' की आशंका के मद्देनजर संविधान की धारा 352 का इस्तेमाल करते हुए आधी रात को तत्कालीन राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से देश में 'आंतरिक आपातकाल' लागू करने की अधिसूचना जारी करवा दी. कैबिनेट की मंजूरी अगली सुबह छह बजे ली गई थी. उसके तुरंत बाद आकाशवाणी पर श्रीमती गांधी ने राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में कहा, ''भाइयों और बहनों, राष्ट्रपति जी ने आपातकाल की घोषणा की है. इससे आतंकित होने की जरूरत नहीं है.'' उन्होंने आपातकाल को जायज ठहराने के इरादे से विपक्ष पर साजिश कर उन्हें सत्ता से हटाने और देश में अव्यवस्था और आंतरिक उपद्रव की स्थिति पैदा करने का आरोप लगाया और कहा कि सेना और पुलिस को भी विद्रोह के लिए उकसाया जा रहा था. उन्होंने कहा, ''जबसे मैंने आम आदमी और देश की महिलाओं के फायदे के लिए कुछ प्रगतिशील कदम उठाए हैं, तभी से मेरे खिलाफ गहरी राजनीतिक साजिश रची जा रही थी.''

आपातकाल के विरुद्ध हमारा संघर्ष

आपातकाल के शिकार या कहें, उसका सामना करने वालों में हम भी थे. तब हम पत्रकार नहीं, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबद्ध ईविंग क्रिश्चियन कालेज में कला स्नातक के छात्र थे और समाजवादी युवजन सभा के बैनर तले समाजवादी आंदोलन और जेपी आंदोलन में सक्रिय थे. आपातकाल की घोषणा के बाद हम मऊ जनपद (उस समय के आजमगढ़) में स्थित अपने गांव कठघराशंकर-मधुबन चले गए थे. लेकिन पुलिस ने वहां भी

पीछा नहीं छोड़ा. जार्ज फर्नांडिस के साप्ताहिक अखबार 'प्रतिपक्ष' के साथ जुलाई के पहले सप्ताह में हमें गिरफ्तार कर लिया गया. हमारे ऊपर इलजाम था कि हम प्रतिबंधित 'प्रतिपक्ष' बेच रहे थे, आपातकाल के विरुद्ध नारे लगा रहे थे और मधुबन थाने के बगल में स्थित यूनियन बैंक में डकैती की योजना बना रहे थे. पुलिस की चार्जशीट के मुताबिक यह सारे काम हम एक साथ कर रहे थे. डी आई आर और 120 बी के तहत निरुद्ध कर हम आजमगढ़ जनपद कारागार के सिपुर्द कर दिए गए. सवा महीने बाद, 15 अगस्त 1975 को पिता जी, समाजवादी नेता, स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी विष्णुदेव भी अपने समर्थकों के साथ आपातकाल के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए गिरफ्तार होकर आजमगढ़ जेल में आ गए. हम पिता-पुत्र आजमगढ़ जेल की एक ही बैरक में महीनों आमने-सामने सीमेंट के स्लीपर्स पर सोते रहे.

भूमिगत जीवन और मधु लिमये से संपर्क

कई महीने जेल में बिताने के बाद परीक्षा के नाम पर हमें पैरोल-जमानत मिल गई, लेकिन एक बार जो जेल से निकले तो दोबारा लौटने के बजाय आपातकाल के विरुद्ध भूमिगत आंदोलन में सक्रिय हो गए. उस क्रम में इलाहाबाद, वाराणसी और दिल्ली सहित देश के विभिन्न हिस्सों में आना-जाना, जेल में और जेल के बाहर भी संघर्ष के साथियों से समन्वय और सहयोग के साथ ही आपातकाल के विरोध में जगह-जगह से निकलने वाले समाचार बुलेटिनों के प्रकाशन और वितरण में योगदान मुख्य काम बन गया था. वाराणसी में हम जेल में निरुद्ध साथी, समाजवादी युवजन सभा के नेता (अभी कांग्रेस के पूर्व राष्ट्रीय महासचिव) मोहन प्रकाश से मिले. उनसे कुछ पते लेकर वाराणसी में ही समाजवादी युवजन सभा, लोहिया विचार मंच और छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के साथियों अशोक मिश्र, योगेंद्र नारायण, नचिकेता, कुंवर सुरेश सिंह, देवाशीष भट्टाचार्य, चंचल मुखर्जी, मदन मोहन लाल श्रीवास्तव आदि के लगातार संपर्क में रहा. वाराणसी प्रवास के दौरान अशोक मिश्र का चेतगंज के पास हबीबपुरा स्थित निवास हमारा ठिकाना होता.

इलाहाबाद में हमारा परिवार था. वहीं रहते नरसिंहगढ़ और बाद में भोपाल जेल में बंद रहे समाजवादी नेता मधु लिमये से पत्र संपर्क हुआ. वह हमें पुत्रवत स्नेह देते थे. उनसे हमने देश भर में तमाम समाजवादी नेताओं-कार्यकर्ताओं के पते लिए. मधु जी के साथ हमारा पत्राचार 'कोड वर्ड्स' में होता था. मसलन, हमारे एक पत्र के जवाब में मधु जी ने लिखा, 'पोपट के पिता को तुम्हारा पत्र मिला.' पत्र में अन्य ब्यौरों के साथ अंत में उन्होंने लिखा, 'तुम्हारा बांके बिहारी.' यह बात समाजवादी आंदोलन में मधु जी के करीबी लोगों को ही पता थी कि उनके पुत्र अनिरुद्ध लिमये का घर का नाम पोपट था और मधु जी बिहार में बांका से सांसद थे. एक और पत्र में उन्होंने बताया कि 'शरदचंद इंदौर गए'. यानी उनके साथ बंद रहे सांसद शरद यादव का तबादला इंदौर जेल में हो गया.'

जब इंदिरा गांधी ने संविधान में संशोधन किया तो उसकी आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए मधु जी ने उसके खिलाफ एक लंबी पुस्तिका लिखी और उसकी, उनके साथ जेल में बंद आरएसएस पलट समाजवादी अध्येता विनोद कोचर की खूबसूरत हस्तलिखित प्रति हमारे पास भी भिजवा दी, ताकि उसका प्रकाशन-प्रसारण हो सके. इसके साथ उन्होंने पत्र लिखा कि अगर हस्तलिपि मिल जाये तो लिखना की 'दमा की दवा मिल गयी है.' उस समय हमारे सामने आर्थिक संसाधनों की कमी भी थी. मधु जी ने इलाहाबाद के कुछ वरिष्ठ अधिवक्ताओं (अधिकतर समाजवादी पृष्ठभूमि के) रामभूषण मेहरोत्रा, अशोक मोहिले, रविकिरण जैन, सत्येंद्रनाथ वर्मा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय में राजनारायण के अधिवक्ता रहे शांतिभूषण और रमेश चंद्र श्रीवास्तव के साथ ही उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र देने वाले कांग्रेस के वरिष्ठ नेता हेमवती नंदन बहुगुणा, उनके साथ प्रदेश के महाधिवक्ता रहे श्यामनाथ कक्कड़ के नाम भी पत्र लिखा कि 'विष्णु पुत्र' जान जोखिम में डालकर काम कर रहा है. इसकी हर संभव मदद करें.' इनमें से समाजवादी पृष्ठभूमि के नेता-अधिवक्ता तो वैसे भी निरंतर हमारी मदद कर रहे थे. उनके घरों में छिप कर रहना, खाना और मौके बे मौके भाभियों से भी कुछ आर्थिक मदद मिलना आम बात थी.

मधु जी के पत्र के साथ हम और समाजवादी नेता विनय कुमार सिन्हा लखनऊ में चौधरी चरण सिंह और चंद्रभानु गुप्त से भी मिले थे. हम लोग चौधरी साहब के एक राजनीतिक फैसले से सख्त नाराज थे. उन्होंने आपातकाल में विधान परिषद के चुनाव में भाग लेने की घोषणा की थी. हमारा मानना था कि विधान परिषद का चुनाव करवाकर इंदिरा गांधी आपातकाल में भी लोकतंत्र के जीवित रहने का दिखावा करना चाहती थीं, लिहाजा विपक्ष को उसका बहिष्कार करना चाहिए था. हमने और विनय जी ने इस आशय का एक पत्र भी चौधरी चरण सिंह को लिखा था. जवाब में चौधरी साहब का पत्र आया कि चुनाव में शामिल होने वाले नहीं, बल्कि विधान परिषद के चुनाव का बहिष्कार की बात करने वाले लोकतंत्र के दुश्मन हैं. हमारा आक्रोश समझा जा सकता था. लेकिन मधु जी का आदेश था, सो हम चौधरी साहब से मिलने गए. उन्होंने हमें समझाने की कोशिश की कि चुनाव का बहिष्कार बचे-खुचे लोकतंत्र को भी मिटाने में सहयोग करने जैसा होगा. हमारी समझ में उनकी बातें नहीं आने वाली थीं. हमने इस बारे में मधु जी को भी लिखा था.

मधु जी का पत्र आया कि तुम लोग चौधरी साहेब के पीछे बेमतलब पड़े हो, यहां जेलों में संघ के लोग जिस तरह से माफीनामे लिखने में लगे हैं, उस पर चिंता करनी चाहिए. गौरतलब है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक मधुकर दत्तात्रेय उर्फ बालासाहेब देवरस ने इंदिरा गांधी को एक नहीं कई 'माफीनामानुमा' पत्र लिखकर आपातकाल में हुए संविधान संशोधन पर आधारित सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश अजितनाथ रे की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ द्वारा श्रीमती गांधी के रायबरेली के संसदीय चुनाव को वैध ठहरान वाले फैसले पर बधाई देने के साथ ही उनकी सरकार के साथ संघ के प्रचारकों और स्वयंसेवकों के सहयोग करने की इच्छा जताई थी. यहां तक कि उन्होंने कहा था कि बिहार आंदोलन और जेपी आंदोलन से संघ का कुछ भी लेना-देना नहीं है. उन्होंने संघ पर से प्रतिबंध हटाने और उसके प्रचारकों-स्वयंसेवकों को जेल से रिहा करने का अनुरोध भी किया था, ताकि वे सरकार के विकास कार्यों में सक्रिय भूमिका निभा सकें. इससे पहले भी उन्होंने 15 अगस्त को लालकिले की प्राचीर से श्रीमती गांधी के

भाषण की भरपूर सराहना की थी. लेकिन इंदिरा गांधी ने उनके पत्रों पर नोटिस नहीं लिया था और न ही कोई जवाब दिया था. बाद में देवरस ने इस मामले पर आपातकाल को 'अनुशासन पर्व' कहने वाले सर्वोदयी नेता विनोवा भावे को पत्र लिखकर उनसे श्रीमती गांधी के साथ अपने करीबी संबंधों का इस्तेमाल करते हुए संघ पर लगे प्रतिबंध को हटाने और प्रचारकों-स्वयंसेवकों की रिहाई सुनिश्चित करवाने के लिए हस्तक्षेप करने का आग्रह किया था. लेकिन उन्होंने भी कोई जवाब नहीं दिया था. महाराष्ट्र विधानसभा के पटल पर रखे गये आपातकालीन दस्तावेजों के अनुसार देवरस ने राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री शंकरराव चह्वाण को भी इसी तरह का पत्र जुलाई 1975 में लिखा था.

बाद में अनौपचारिक तौर पर तय हुआ था कि सामूहिक माफी तो संभव नहीं, अलबत्ता माफीनामे निजी और स्थानीय स्तर पर अलग अलग भरे जाएं तो सरकार उन पर विचार कर सकती है. एक बिना शर्त वचन पत्र (अन्क्वालिफाइड अंडरटेकिंग) भरने की बात तय हुई थी, जिसके लिए एक प्रोफार्मा भेजा गया था. इसके बाद से जेलों में माफीनामे भरने का क्रम शुरु हो गया था. जिनके पास प्रोफार्मा नहीं पहुंच सका, वे लोग एक पंक्ति के माफीनामे निजी और स्थानीय स्तर पर भर-भर कर जमा करने लगे. इसमें लिखा होता था, 'हम सरकार के बीस सूत्री कार्यक्रमों का समर्थन करते हैं.'

बहरहाल, इलाहाबाद से हम मधु जी को अपने पत्र रविशंकर के नाम से भेजते थे. अपने पते की जगह अपने निवास के पास अपने मित्र अशोक सोनी के घर का पता देते थे. एक बार मधु जी ने जवाबी पत्र रविशंकर के नाम से ही भेज दिया. उससे हम परेशानी में पड़ने ही वाले थे कि डाकिये से मुलाकात हो गई और मित्र का पत्र बताकर हमने वह पत्र ले लिया. हमने मधु जी को लिखा कि ''प्रयाग में रवि का उदय होता है, भोपाल में अस्त होना चाहिए, भोपाल से शंकर की जय होगी तब बात बनेगी. आप जैसे मनीषी इसे बेहतर समझ सकते हैं.'' इसके बाद मधु जी के पत्र दिए पते पर जयशंकर के नाम से आने शुरु हो गए. आपातकाल की समाप्ति के बाद मधु जी ने बताया था कि किस तरह वे हमारे पत्र जेल में बिना सेंसर के हासिल करते (खरीदते) थे. वे अपने पत्रों को भी कुछ इसी तरह स्मगल कर बाहर भिजवाते थे, कई बार अपनी पत्नी चम्पा लिमये के हाथों भी.

आपातकाल में जब लोकसभा की मियाद पांच से बढ़ाकर छह वर्ष कर दी गयी तो विरोधस्वरूप मधु जी और शरद यादव ने लोकसभा से त्यागपत्र दे दिया था. त्यागपत्र तो समाजवादी नेता जनेश्वर मिश्र ने भी दिया था, लेकिन उन्होंने अपना त्यागपत्र लोकसभाध्यक्ष के पास भेजने के बजाय चौधरी चरण सिंह के पास भेज दिया था. मधु जी ने मुझे पत्र लिखकर कहा कि नैनी जेल में जाकर जनेश्वर से मिलो और पूछो कि क्या उन्हें लोकसभाध्यक्ष का पता नहीं मालूम! मैं उनके पत्र के साथ किसी तरह मुलाकाती बनकर नैनी जेल में जनेश्वर जी से मिला और उन्हें मधु जी का सन्देश दिया. जनेश्वर जी कुछ उखड़ से गए और बोले, मधु जी अपनी पार्टी के नेता हैं, लेकिन हमारी पार्टी (लोकदल) के नेता, अध्यक्ष चरण सिंह हैं. लिहाजा, हमने त्यागपत्र उनके पास ही भेजा.

आपातकाल के सबक!

दरअसल, आपातकाल एक खास तरह की राजनीतिक संस्कृति और प्रवृत्ति का परिचायक था, जिसे लागू तो इंदिरा गांधी ने किया था, लेकिन बाद के दिनों-वर्षों में और आज भी वह एकाधिकारवादी, अधिनायकवादी प्रवृत्ति कमोबेस सभी राजनीतिक दलों और नेताओं में देखने को मिलती रही है. भाजपा के वरिष्ठ और बुजुर्ग नेता लालकृष्ण आडवाणी ने पांच साल पहले एक अंग्रेजी अखबार से बातचीत में हमारी मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था में ही इन प्रवृत्तियों के मौजूद रहने और आपातकाल के भविष्य में भी लागू किये जाने की आशंकाएं बरकार रहने का संकेत दिया था. आज स्थितियां ठीक उसी दिशा में जाते हुए दिख रही हैं. देश आज धार्मिक कट्टरपंथ और 'उग्र राष्ट्रवाद' के सहारे एक अराजक माहौल और अघोषित आपातकाल की ओर बढ़ रहा है, जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ी साफ दिख रही है. प्रेस और मीडिया पर भी सरकारी विज्ञापनों, सीबीआई, प्रवर्तन निदेशालय और आयकर विभाग जैसी सरकारी एजेंसियों यहां तक कि अदालतों का भी इस्तेमाल करके असहमति के स्वरों को दबाकर एक अलग तरह तरह की 'अघोषित सेंसरशिप' के अक्स साफ दिख रहे हैं. राजनीतिक विरोधियों के विरुद्ध बदले या वैर भाव से प्रेरित कार्रवाइयां हो रही हैं. मणिपुर में सत्ता पक्ष के कई विधायकों के सरकार से समर्थन वापस ले लेने के बाद राज्य में वैकल्पिक सरकार बनाने का दावा करने वाले कांग्रेस के पूर्व मुख्यमंत्री इबोबी सिंह के घर अगले ही दिन सीबीआई की टीम पहुंच गई.

आपातकाल की समाप्ति के बाद उसके गर्भ से निकली जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद हमारे 'लोकतंत्र प्रेमियों' ने सम्भवतः पहला अलोकतांत्रिक काम कांग्रेस की नौ राज्यों की चुनी हुई राज्य सरकारों को बर्खास्त करवाकर किया. और नहीं तो मीसा के विरोध में सत्तारूढ़ हुए लोगों को देश में मिनी मीसा लगाने का प्रस्ताव करने में जरा भी संकोच नहीं हुआ. यह बताने में कोई हर्ज नहीं कि हमारी अंतिम गिरफ्तारी जनता पार्टी के शासन में ही हुई थी और उसी के साथ सक्रिय राजनीति से एक तरह का मोहभंग भी. इस तरह के तमाम प्रसंग हैं, जब 'लोकतंत्र प्रेमियों' ने अपनी सत्ता को मिलने वाली चुनौतियों से निबटने के लिए और ज्यादा घातक और खूंखार कानूनों की खुलेआम वकालत की. उन पर अमल भी किया. अभी सीएए और एनआरसी का विरोध करने वालों को यूएपीए जैसे कठोर कानून के तहत निरुद्ध किया गया. कई मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को राजद्रोह जैसे खतरनाक कानूनों के तहत जेल में कैद किया गया. जेल में उन्हें यातनाएं दिए जाने की सूचनाएं भी मिल रही हैं. इसलिए भी आपातकाल की बरसी मनाते समय आमजन को न सिर्फ आपातकाल, बल्कि उन खतरनाक राजनीतिक प्रवृत्तियों के बारे में भी आगाह करने की जरूरत है, जो गरीबी हटाओ के नारे के साथ भारी बहुमत लेकर सत्तारूढ़ हुई इंदिरागांधी जैसी नेता को 'तानाशाह' बना देती हैं और आज भी कुछ लोगों के भीतर एकाधिकारवादी 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' का एहसास भर देती हैं. ये प्रवृत्तियां भी अमीर बनाम गरीब की लड़ाई का झांसा देकर, धार्मिक कट्टरपंथ पर आधारित अंध राष्ट्रवाद को सामने रखकर अपने विरोधियों और असहमति के स्वरों को दबाने के रास्ते पर चल रही हैं. इन लोगों और इन प्रवृत्तियों से न सिर्फ सावधान रहने की, बल्कि उनका मुकाबला करने के लिए आमजन को जागरूक और तैयार करने की भी जरूरत है. ❑

चीनी ऐप्स पर प्रतिबंध

गलवान से बाहर खतरे और भी बड़े हैं

❑ नितिन ठाकुर

प्रतिबंध के बाद टिकटोक के इंडिया हेड ने लिखा था कि उनकी कंपनी ने भारत में इंटरनेट का लोकतांत्रीकरण किया है. बहुत से लोग इस बात की गहराई को समझ नहीं पाएंगे और न उसके असर को. चौदह भाषाओं और तीस करोड़ यूज़र्स के साथ टिकटोक ने अपने अनगढ़ कंटेंट क्रिएटर्स के दम पर तुलनात्मक रूप से नफ़ीस यूट्यूबर्स को जैसी टक्कर दी, वह बता रहा है कि उसे लौटना ही है. ये सरल सा नियम है कि जिस चीज़ की ज़रूरत होती है, उसे हटाया नहीं जा सकता. हटाएंगे तो स्पेस बनेगा लेकिन वह किसी न किसी तरह भरा ज़रूर जाएगा, फिर चाहे जिस रूप में भी हो. कैरी मिनाती बनाम टिकटोक वालों की बहस सिर्फ व्यूज़ पाने की होड़ नहीं थी, बल्कि एलीट और तथाकथित गंभीर क्रिएटर्स की उन लोगों से लड़ाई थी, जिन्हें वे खुद से नीचे मानते रहे. अचानक इन क्रिएटर्स ने देखा कि टिकटोक पर पैरलल वर्ल्ड बन गया है और उस दुनिया के अपने सितारे हैं, जो मुख्यधारा की मीडिया में जगह पाने लगे हैं, यूट्यूबर्स के मुकाबले बेहद जल्दी. अब तो हालत ये थी कि फिल्म इंडस्ट्री के बड़े नाम टिकटोक पर पहुंचकर उसे संभ्रांत वर्ग की वैधता प्रदान करने लगे थे और ये संभवतः अकेली चीज़ है, जिसकी कमी टिकटोक महसूस करता होगा.

टिकटोक की ही सिस्टर कंपनी है हैलो. वह फेसबुक की तरह काम करती है. अगर आप वहां टहलते तो पाते कि टिकटोक जैसे मूड वालों की भीड़ वहां भी है. उधर ट्विटर की तरह संगठित पीआर या ट्रेंड नहीं चलता, न ही फेसबुक जैसी लंबी बहस है, लेकिन नामी-गिरामी कंपनियां उसकी ताकत पहचान गई थीं, नतीजतन सभी के एकाउंट बन चुके थे. मीडिया वालों को तो अपना सामान बेचने के लिए ख़ासा ट्रैफिक भी मिलने लगा था. एकाउंट वैरिफिकेशन ज़रा आसान है, इसलिए उस ख़ास निशान की चाह रखने वालों ने भी हैलो पर डेरा जमाया. दोनों कंपनियों की मालिक बाइटडांस नाम की कंपनी का हिंदुस्तान को लेकर विज़न लंबा-चौड़ा है और मैं मान ही नहीं सकता कि एक झोंक में उठाए किसी कदम से वे निराश होकर लौटेगी. चीनियों को पता है कि धंधा कैसे होता है. उनके टारगेट पर जैसी भीड़ है, वह असल हिंदुस्तान बनाती है। व्यूज़ के मामले में उसकी ताकत वोट जैसी है, जहां हर कोई एक है. यही वह अकेली चीज़ है, जिसके बलबूते विज्ञापन का धंधा फलता-फूलता है. खुद डेटा चोरी के आरोप झेल रही सरकार ने अचानक वही इल्ज़ाम लगाकर जिन्हें बैन किया है, वे जानते हैं कि देर सवेर वापसी होकर रहेगी. फेसबुक के खिलाफ तो डेटा बेचने के सबूत थे. लेकिन जिस देश में उसने ये किया, वहां भी खुद को बैन से बचा ले गया. अमेरिका, ब्रिटेन या बाकी यूरोप में डेटा को लेकर एक समझदारी है, जो भारत में पनपी भी नहीं है, इसलिए डेटा वाले आरोपों को कोई गंभीरता से नहीं लेगा. कंपनी के दफ्तर गुड़गांव से लेकर मुंबई में हैं. पिछले दिनों कई मीडिया वालों ने वहां करियर शुरू किया था. जो ऐसी कंपनियों के अंदरूनी कामकाज से परिचित हैं, वे जानते हैं कि चीनी लोग कंपनी के रोज़मर्रा वाले कामों में गहरा दखल रखते हैं. अपने भारतीय सहकर्मियों से बेहतर तालमेल के लिए वे अपने भारतीय नाम रखते हैं. भारत की भाषाएं सीखते हैं.

ऐसी कंपनियों को हराना उतना आसान नहीं है, और तब तो कतई नहीं, जब वे चीन जैसे चालाक देश की वृहद रणनीति का हिस्सा बनकर आई हों. ये केवल पैसा नहीं बटोरते, बल्कि लोगों का मानस बदलते हैं. जितनी मुझे जानकारी है, कंपनी जल्द ही एक गंभीर न्यूज़ प्लेटफॉर्म खोलने वाली थी या खोलेगी और टिकटोक-हैलो की रीच का इस्तेमाल कंटेंट फैलाने में करेगी. जो भीड़ इन दोनों जगहों पर बिना ये जाने अब तक सक्रिय थी कि कंपनी चीनी है, क्या आप उससे उम्मीद करते हैं कि वह इन्हीं जगहों से आई ख़बर को पढ़कर फिल्टर कर सकेगी कि ये समाचार प्रो-चाइना है या नहीं? भारत में उस लेवल की ग्राहक जागरुकता बस सपना है. चीन से तनातनी के दौरान सरकार ने बैन लगाया है, और यही वजह है कि इन प्लेटफॉर्म्स से दिन रात चिपके रहने वाले भी कोई विरोध नहीं कर पाए. आम दिनों में अगर सरकार ने ये किया होता तो विमर्श के कई कोण देखे जाते. जिन टिकटोकियों ने यूट्यूबर्स को आतंकित कर दिया था, क्या आपको लगता है कि वे चुप रहते? ये लोग रोज़ वीडियोज़ डाल डालकर धान बो देते. पूरे हिंदुस्तान में फैले अपने प्रशंसकों को बताते कि डेटा चोरी के नाम पर कैसे उनकी रोज़ी रोटी छीनी जा रही है, और तब यही चीनी मज़े में कहते कि कैसे उन्होंने देश के लोगों को ही उनकी सरकार से लड़वा दिया है. सच तो ये है कि मोबाइल बेचने वाली चीनी कंपनियां हों या सॉफ्टवेयर बेचने वाले, सभी अपनी सरकार की योजना के हिस्से हैं. ये मानने की कोई वजह नहीं है कि अगर जिनपिंग ने चाहा तो तमाम कंपनियां उन्हें हर डेटा उपलब्ध नहीं कराएँगी. कंपनियों के मालिक जानते हैं कि अपनी सरकार की सेवा करके ही वे दूसरे देशों में सुरक्षित हैं. चीन में लोकतंत्र भी नहीं है कि अमेरिका-ब्रिटेन की तरह कहीं सुनवाई हो जाएगी.

भारत सरकार अब भी ऐप्स पर हमलावर है, न कि मोबाइल कंपनियों पर, जो डेटा चोरी में अधिक माहिर हैं, क्योंकि भारत में उनका निवेश पुराना और अधिक है. इसके अलावा वे ताकतवर भी बहुत हैं. उनकी गहरी घुसपैठ है. सरकारी ठेकों में वे बोली लगाते हैं सो अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि राजनीति और नौकरशाही में इनका हस्तक्षेप कैसा होगा. अगर वाकई सरकार सरहद वाले झगड़े के बदले से आगे बढ़कर डेटा चोरी के मसले पर कुछ करना चाहती है तो इन चीनी कंपनियों के मोबाइलों को भी बैन करे और फिर टिकटोक से लेकर मोबाइल तक ऐसे विकल्प उपलब्ध कराने को लेकर सोचे कि स्पेस भर जाए. सस्ती दरों पर माल उपलब्ध कराना ही एकमात्र रास्ता होगा, जिसके बारे में मुझे निजी तौर पर लगता है, अभी हमें चीनियों के बराबर आने में समय लगेगा. चीन से टक्कर में हमेशा प्रतिक्रियात्मक और तात्कालिक उपाय काम नहीं आएंगे. वे पचास साल के बाद इस तरफ बढ़े हैं और हम असली ख़तरे को समझने के बजाय गलवान की घाटी में उलझे हैं. गलवान से बाहर ख़तरे और भी बड़े हैं. चीन को गलवान में तो रोका ही जाना चाहिए, देश के भीतर भी उसकी पकड़ कमज़ोर करना ज़रूरी है, लेकिन आहिस्ते से और सोच समझकर. ❑

विस्तारवाद के बिना राष्ट्रवाद जीवित नहीं रहता

❑ अपूर्वानंद

चीन के सम्पूर्ण बहिष्कार का नारा देने वाले चीन न बन पाने के दुःख से क्यों भरे हुए हैं? क्या यह अवसरवादी राष्ट्रवाद की वजह से है? इस अवसरवादी और कायर राष्ट्रवाद की चर्चा की प्रासंगिकता इतनी ही है कि इसे मालूम है कि चीन के मामले में वह पराक्रम का जोखिम नहीं ले सकता? लेकिन उसे खुद को साबित करना है, सो प्रतीकात्मक विरोध से काम चलाने को वह बुरा नहीं मानता। आज जो चीन के सम्पूर्ण बहिष्कार का नारा दे रहे हैं, वे कल तक अफ़सोस कर रहे थे कि चीन ने विकास की जो ऊँचाइयाँ हासिल कर ली हैं, हम उनके क़रीब भी क्यों नहीं पहुँच पाए हैं। कल तक ही क्यों, वे आज भी चीन न बन पाने के दुःख से भरे हुए हैं। भारत सरकार की आलोचना करने वाले हमवतन लोगों को ही वे धमकी देते हैं कि काश, यह देश चीन होता तो फिर इन आलोचकों को आटे-दाल का भाव मालूम हो जाता। इन लोगों में चीन न हो पाने की ललक पिछले कुछ वर्षों में व्यक्त होती रही है।

भारत के राष्ट्रवादियों के मन में एक चीन-ग्रंथि है। यह दोतरफ़ा काम करती है। चीन के प्रति आदर और चीन से घृणा, दोनों ही इस स्वभाव में शामिल हैं। घृणा अब दिखलाई पड़ रही है, जीवन के हर क्षेत्र में चीन के बहिष्कार के आह्वान में। चीन भारत के 'चिर शत्रु' पाकिस्तान का संरक्षक रहा है, वह हमारी सीमाओं को नहीं मानता है, ये कुछ ऐसी बातें हैं जो चीन के प्रति मन में दुराव पैदा करती हैं। इसके बावजूद चीन के साथ हम उसी तरह पेश नहीं आ सकते, जैसे पाकिस्तान के साथ। यह बोध हमारे चीन विरोधी राष्ट्रवाद को यथार्थवादी होने को बाध्य करता है। कमज़ोर आँख दिखलाए तो उसे औक़ात बता देनी चाहिए लेकिन मज़बूत पीट दे तो बुद्धि से काम लेना चाहिए। तुरत जवाब देने से लेने के देने पड़ सकते हैं।

दोनों ही स्थितियों में वीरता नामक भाव की कोई जगह नहीं है। या वह कभी थी ही नहीं। यानी पाकिस्तान के साथ पिछले दिनों जो हुआ, उसमें भी मान लिया गया कि भारत ने वीरता दिखला दी है। पूरी दुनिया 'सर्जिकल स्ट्राइक' के भारत सरकार के दावों पर शक करती रही, लेकिन सरकार अपना वीराख्यान सुनाती रही। जनता को राष्ट्रवाद के नाम पर उस गल्प को मान लेने पर मजबूर किया गया। लेकिन उस पूरे प्रकरण में जो रणनीतिक चूक हुई, उसे भी इस राष्ट्रवाद ने नज़रअंदाज़ कर दिया। पाकिस्तान ने भारत की वायुसीमा में घुसकर भारत के लड़ाकू विमानों पर हमला किया और एक को मार गिराया, एक पायलट को पकड़ लिया, इस तथ्य को इस राष्ट्रवाद ने विचारणीय ही नहीं माना। इसलिए इसे रणनीतिक या अवसरवादी राष्ट्रवाद कहा जा सकता है, जिसका मूल तत्त्व चतुराई और कायरता है। यह वही चतुर कायरता है जो यह क़बूल नहीं कर रही कि चीन उस इलाक़े में घुसकर बैठ गया है, जिसे कल तक भारत अपना मानता रहा था। इस राष्ट्रवाद के मुख्य प्रवक्ता के मुँह से इस पूरे प्रकरण में एक बार चीन शब्द न सुनकर भी इसके अनुयायी अपने नेता पर न्योछावर हैं कि वह कितना चतुर सुजान है।

चतुर सुजान वह है जो पीठ पर लगी धूल दीखने नहीं देता, वह नहीं जो पीठ को ज़मीन से लगने नहीं देता। लेकिन जो ऐसे को अपना नेता माने, उसका ख़ुद अपने बारे में क्या ख़याल है? राष्ट्रवाद एक बुरी लत है, यह सारे सयाने कह गए हैं। लेकिन कुछ लोग ईमानदारी से इसमें गिरफ्तार होते हैं, एक दूसरे किस्म के प्राणी वे हैं, जो इस राष्ट्रवाद की क़ीमत देने के वक्त दाएँ-बाएँ देखने लगते हैं। इस अवसरवादी और कायर राष्ट्रवाद की चर्चा की प्रासंगिकता इतनी ही है कि इसे मालूम है कि चीन के मामले में वह पराक्रम का जोखिम नहीं ले सकता। लेकिन उसे खुद को साबित करना है, सो प्रतीकात्मक विरोध से काम चलाने को वह बुरा नहीं मानता।

भारत का राष्ट्रवाद और चीन

भारत का यह राष्ट्रवाद चीन से काफ़ी कुछ सीखता रहा है। चीन ने तिब्बत पर क़ब्ज़ा कर लिया और वह उसका चीनीकरण करने पर तुला है, यह सब जानते हैं। तिब्बत की स्वतंत्रता के प्रति उस भारतीय राष्ट्रवाद का क्या रुख़ है, जिसकी चर्चा हम पहले कर आए हैं? दलाई लामा के शांतिवाद के प्रति उसके मन में कितना आदर है? वह मन ही मन चीन से ईर्ष्या करता है कि किस तरह उसने ग़ैर हान आबादी पर हान प्रभुत्व स्थापित कर दिया है। चीन में ग़ैर हान समुदायों के साथ क्या व्यवहार किया जाता है, इसपर भारतीय मीडिया में बात नहीं होती। लेकिन वह बर्ताव वैसा ही है, जैसा भारत का बहुसंख्यकवादी राष्ट्रवाद इस देश के अल्पसंख्यकों के साथ करता है। उसकी दबी इच्छा है कि भारत मुसलमानों के साथ वही कर सके, जो चीन ने वीगर मुसलमानों के साथ किया है। वीगर मुसलमानों को लाखों की संख्या में चीनी तौर तरीक़ों में प्रशिक्षित करने के लिए 'डिटेंशन कैम्पों' में उन्हें क़ैद कर लेने से सीखकर वैसा ही कुछ यहाँ भी कर पाने की इच्छा बारंबार व्यक्त की गई है। भारतीय मुसलमानों को शुक्र मनाने को कहा गया है कि अभी तक उनके साथ ऐसा नहीं किया जा रहा।

अपने से भिन्न समुदायों को अपने रंग में ढालने, उनकी ज़ुबान और चाल ढाल बदल देने की हिंसक कामना दुनिया में हर जगह रही है। भारत उसका अपवाद नहीं है। चीन जिस क्रूरता से उसे कर ले जा रहा है, हम क्यों नहीं कर पा रहे, यह बेबसी और अधिक हिंसा को जन्म देती है। यह हिंसा भारत में ईसाई और मुसलमान समुदायों को निशाना बनाती रही है।

इस पर बात करने की ज़रूरत है कि बिना इस आंतरिक विस्तारवाद के चीन वह नहीं कर सकता जो वह अपने पड़ोसियों के साथ कर रहा है। यह आंतरिक विस्तारवाद अल्पसंख्यक समुदायों को बहुसंख्यकों के उपनिवेश में शेष कर देना चाहता है। वह उनका अभिभावक, स्वामी और शिक्षक बनकर उन्हें सभ्य और अनुशासित बनाना चाहता है। किसी भी पार्टी या व्यक्ति की तानाशाही तभी चल सकती है, जब वह बहुसंख्यक समुदाय को यक़ीन दिला दे कि वह उसकी तरफ़ से काम कर रहा है और उनके प्रभुत्व का रक्षक है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने ख़ुद को हान हितों का प्रतिनिधि बना दिया है। वैसे ही, जैसे सोवियत संघ में रूसीकरण स्तालिन की नीति का अनिवार्य अंग था।

विस्तारवाद के बिना राष्ट्रवाद का जीवित रहना सम्भव नहीं। चीन भारत, भूटान, पाकिस्तान, नेपाल आदि की सीमाओं को बेमानी बना देना चाहता है। इस मनोवृत्ति का मुक़ाबला उस मन से नहीं किया जा सकता जो वृहत्तर भारत की कल्पना में विश्वास रखता है।

वृहत्तर भारत एक प्यास है, भारत को पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान, मलेशिया, जावा, सुमात्रा, अफ़ग़ानिस्तान, इंडोनेशिया, कंबोडिया, आदि तक विस्तृत देखने की इच्छा। इस वृहत्तर भारत का नक्शा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हर सदस्य के हृदय में अंकित है। जब तक यह रहेगा, ऐसे भारतीय दूसरे देशों को अपना इच्छित अंग मानते रहेंगे। मन ही मन वे एक विशालतर भारतीय साम्राज्य का सपना देखते रहते हैं। यह उन्हें अतृप्त रखता है, भविष्य में इतनी ताक़त बटोर लेने के लिए प्रेरित करता है, जिससे यह स्वप्न साकार हो सके। अखंड भारत की महत्त्वाकांक्षा आज हीन भावना को जन्म देती है, जो हिंसक राष्ट्रवाद की तरफ़ ले जाती है। जब यह बाहर आक्रामक नहीं हो सकती तो अंदर उपनिवेश तलाशती है। वह है दूसरों को अपने क़ब्ज़े में लेने की इच्छा, अपना प्रभुत्व प्रसारित करने की कामना। इस कामना की पूर्ति के लिए हर व्यक्ति को उपनिवेश होना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय विश्वविद्यालयों को जिस तरह नियंत्रित करने का अभियान चलाया गया है, उसपर भी चीनी छाप है। स्वतंत्र व्यक्ति की जगह सही किस्म की राष्ट्रवादी इकाइयों का निर्माण, यही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। चीन में स्वतंत्र मन की जगह जेल है। भारत में भी स्वतंत्र चेता व्यक्तियों से बहुसंख्यकों की घृणा बढ़ती जा रही है और वे चाहते हैं कि अगर उनकी हत्या नहीं की जा सकती तो उन्हें जेल में तो रखा ही जा सकता है। शिक्षा का मक़सद सिर्फ कार्यकुशल हुनरमंद उत्पादक इकाइयों का निर्माण है। यह भी बिना राष्ट्रवादी वफ़ादारी के नहीं हो सकता।

चीन ने अभी कुछ रोज़ पहले हॉंगकॉंग को पूरी तरह अपने क़ब्ज़े में लेने के लिए जो क़ानून बनाया, उसने हमें पिछले साल की 5 अगस्त की याद दिला दी। उस दिन भारत की संसद ने भी कश्मीर को पूरी तरह अपने में मिला लेने का क़ानूनी क़दम उठाया था। इसका मतलब कश्मीरियों के लिए उनकी सत्ता का सम्पूर्ण विलोप था। भारत के बहुसंख्यक समुदाय को एक नया इलाक़ा फ़तह करने का आनंद दिया गया था। चीन हॉंगकॉंग के साथ ठीक वही कर रहा है। चीन को लेकर राष्ट्रवादी मन में एक हिरिस है। उसका इलाज किए बिना चीन का मुक़ाबला करने में हमेशा ही चीन की शक्ल में खुद ढल जाने का ख़तरा है। यह और बात है कि शायद इस मुक़ाबले में इच्छा वही हो। **-सत्य हिन्दी डॉट कॉम**

फेक न्यूज़
एक रियल स्टोरी

❑ सौम्या गुप्ता

खबरों की दुनिया में फेक न्यूज एक ऐसी सच्चाई है, जो असर रखती है, परिणाम देती है और सफल भी है। निःसंदेह आज इसके पीछे राजनीति की ताकत भी है। लेकिन अंततः नीर क्षीर विवेक का दायित्व एक बोधशील नागरिक के तौर पर हमारा ही है। पढ़िये फेक न्यूज, इसकी कहानी, इसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव और इसकी गुत्थियों पर यह महत्त्वपूर्ण आलेख। **-सं.**

प्रेस के आगमन से पहले भी इतिहास और हमारी कहानियों में फ़ेक न्यूज़ के कई किस्से दर्ज हैं। फ़र्क सिर्फ ये है कि तब उन्हें फ़ेक न्यूज़ नहीं कहते थे। ईसापूर्व पहली सदी के दौरान, रोमन सेना के लीडर अगस्तस ने अपने प्रतिद्वंदी मार्क ऐंटॉनी के खिलाफ़ अफ़वाहों और दुष्प्रचार का एक अभियान चलाया था। इस अभियान के चलते, मार्क ऐंटॉनी पर तरह तरह के इल्ज़ाम लगाए गए थे। उन्हें शराबी, व्याभिचारी और रानी क्लिओपेट्रा के हाथों की कठपुतली भी कहा गया। भारतीय पुराणों में भी अफ़वाहों का जिक्र होता है। महाभारत के युद्ध के समय कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर, कृष्ण ने गुरु द्रोण को परास्त करने के लिए पांडवों को सुझाव दिया कि हमें द्रोणाचार्य और कौरवों के खेमे का मनोबल तोड़ना होगा। तब कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहलवाया, 'अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो' अर्थात पता नहीं कि अश्वत्थामा नामक हाथी या मनुष्य कौन मारा गया है। गुरु द्रोणाचार्य युद्ध भूमि में कमज़ोर पड़ गए। अन्यथा महाभारत के युद्ध में गुरु द्रोण की मृत्यु लगभग असम्भव थी। उनकी मृत्यु को आसान बनाने के लिए कृष्ण ने यह छल किया था। आज के संदर्भ में कोई फ़ैक्ट चेकिंग संस्थान, इस बात को फ़ेक न्यूज़ भी कह सकता है।

यह फ़ेक न्यूज़ युग है..

वर्तमान की फ़ेक न्यूज़ और अफ़वाहों ने एक अलग आयाम और रूप ले लिया है। ये अपने आप में इतनी बड़ी समस्या बन गयी है कि साल 2016 में ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी ने 'Post-Truth' को अपने शब्दकोश में शामिल किया था। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के मुताबिक़ पोस्ट ट्रूथ (Post-Truth) का अर्थ था एक ऐसा वक्त या युग, 'जिसका सम्बन्ध ऐसी परिस्थितियों से हो, जहाँ लोक-मत या जनता की राय बनाने में तथ्यों और वास्तविकता का बहुत कम योगदान और प्रभाव रहता है।' लोगों की भावनाएँ और निजी विचार, जनता की सम्मति को प्रेरित करते हैं। 'Post-Truth' का तात्पर्य ये नहीं है कि अब सच के कोई मायने नहीं हैं या कोई सच मानता नहीं है या कोई सच मानना नहीं चाहता या सच का कोई अस्तित्व नहीं है। न तो हमें यह मानना चाहिए कि ये दौर सच के परे है और न ही यह कि ये सच के बाद का दौर है। बल्कि, ये एक ऐसा दौर है जहाँ सच मुश्किल में है, जहाँ सच को न देख पाने या सच के न सामने आने की सम्भावना बहुत ज्यादा है। मुमकिन है कि, यह एक ऐसा वक्त हैं जहाँ वास्तविकता, बहुसंख्यक सत्ता पक्ष और भावनात्मक विचारों के अधीन है। आखिर क्यों है सच जोखिम में? क्या होती है फ़ेक न्यूज़ और क्यों ये फैल पाती है? क्यों हम लोग कुछ बातों को बिना सबूत के सच मान लेते हैं? क्यों हम हमेशा एक ही तरह की ख़बरें या एक ही प्रकार के प्रसंगों को सच मान लेते हैं?

झूठ, आधा-सच या तथ्यों का विकल्प

साल 1600 ईसवीं में रोम के एक भीड़ भरे बाज़ार में, एक शख़्स को उल्टा लटका कर उसको गालियां दी जा रही थीं। भीड़ खड़े होकर इस विधर्मी के अंत का तमाशा देखने को उत्सुक थी। उसकी जुबान, कैथोलिक चर्च, ईसा और महान वेटिकन के खिलाफ़ बोलने के आरोप में सिल दी गई थी। कुछ ही देर में उसके शरीर को आग लगा दी गई। आग की

लपटों में घिरे, जलते और अपने निर्मम अंत की ओर जाते गिआर्डिनो ब्रूनो का कुसूर ये था कि उसने दावा किया था कि धरती, सूरज के चारों ओर परिक्रमा करती है – जबकि कैथोलिक चर्च का मानना इसके ठीक उलट था।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो ने जब यही दावा किया कि पृथ्वी सूरज के चक्कर काटती है, और पृथ्वी नहीं सूरज हमारे सौर मंडल का केंद्र है, तब उन पर भी यही इल्ज़ाम लगाया गया था। उनकी बातों को विधर्म , झूठ और पाखंड कहा गया था। फ़र्क बस ये था कि उनको जिंदा छोड़ दिया गया और ता-उम्र घर में क़ैद कर दिया गया। उनके द्वारा लिखी गयी चीज़ों के प्रकाशन पर रोक लगा दी गयी थी। उनकी बातें अंततः सच साबित हुईं, पर क्योंकि उनकी बातों ने समाज की प्रबल आवाज़ यानी कि चर्च को चुनौती दी थी, तो उनकी बातों को झूठ क़रार दे दिया गया। लेकिन एक और बात हुई, गैलीलियो की घटना के बाद ,तथ्यों और उनके सूत्रों पर एक बड़े स्तर पर विचार विमर्श होने लगा। तो क्या धर्म या प्रबल या प्रबुद्ध विचारों के खिलाफ़ बोलना, झूठ होता है? आखिर सच, झूठ, आधा सच, पूरा झूठ होते क्या हैं? आखिर सूत्रों, तथ्यों को कैसे समझा जाए? इन सवालों पर आने से पहले, वर्तमान समय की थोड़ी बात कर लेते हैं।

भारत में लगभग 14 ऐसी कम्पनियाँ हैं, जो फ़ेक न्यूज़ से लड़ने का काम कर रही हैं। ऑल्ट न्यूज़, बूम, विश्वास न्यूज़ उनमें से प्रमुख संस्थाएँ हैं। इन सबके बावजूद आज फ़ेक न्यूज़ एक बहुत बड़ी समस्या है। क्यों झूठ पकड़े जाने की सम्भावना के बावजूद नेता, देशों के प्रमुख लगातार झूठ बोलकर या तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर पेश करते रहते हैं? उदाहरण के तौर पर जब राष्ट्रपति ट्रम्प का चुनाव हुआ था तो उन्होंने कहा कि, राष्ट्रपति रीगन के बाद ये सबसे बड़ी चुनावी जीत है। जबकि ऐसा नहीं था। उन्होंने कहा कि, उनके अभिषेक के उत्सव में इतिहास की सबसे बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई थी। जबकि तस्वीरों में ऐसा कुछ नज़र नहीं आता है। प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी चुनाव रेलियों में दावा किया कि Direct Benefit Transfer की योजना उनकी सरकार ने शुरू की थी, किंतु इस योजना की शुरुआत तो साल 2013 में ही हो गयी थी। इन सबको हम झूठ की कैटेगरी में डाल सकते हैं। पर आधे सच तो और भी दिलचस्प होते हैं, जैसे ट्रम्प ने कहा कि उनके भाषण के दौरान, सब लोगों ने खड़े होकर उनको तालियाँ और सराहना दीं, किंतु सच तो ये था की उस मीटिंग के दौरान ट्रम्प ने स्टाफ़ ने किसी को बैठने की अनुमति ही नहीं दी थी। पर फिर क्यों ये नेता इतने मशहूर हैं? ट्रम्प के समर्थकों को जब ट्रम्प के झूठ बताए जाते हैं तो वो ये कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं की ट्रम्प की बातों को गम्भीरता से लेना चाहिए न की वस्तुतः तौर से। मतलब उनके हर शब्द पर नहीं, बल्कि उनकी बात पर ध्यान देना चाहिए।'

अविश्वास से अंधविश्वास तक

उत्तेजित या प्रेरित तर्कशक्ति की वजह से जब हमें हमारी धाराणाओं के विपरीत या उनसे अलग कोई तर्क या डेटा दिया जाता है तो हमको मानसिक असहजता का अनुभव होता है। उस नए डेटा को मानने से ज्यादा हमें उसको ख़ारिज करने में आसानी होती है।

अपने पूर्वाग्रह की वजह से हम वही किताबें, ख़बरें, कहानियाँ ढूँढते हैं जो हमारी वर्तमान धाराणाओं से सहमति रखते हों। न सिर्फ सूचना खोजने में हम अपने पूर्वाग्रहों पर निर्भर होते हैं, पर जो सूचना हमारे सामने आती है उसको हम अपने हिसाब से समझ भी लेते हैं। जैसे कि नाज़ी जर्मनी में यहूदियों के खिलाफ़ रेडियो पर लगातार दुष्प्रचार किया जाता था, पर उसका दुष्प्रभाव सिर्फ उन इलाक़ों में देखने को मिला जो पहले से ही यहूदियों के खिलाफ़ थे।

मुख्यधारा की बातें

वैज्ञानिकों के अनुसार हमारे पास सीमित मानसिक क्षमताएँ और याद्दाश्त होती है। हमारे सामने अगर दस तरह की बातें हैं, तो हम सिर्फ कुछ बातों पर ध्यान देते हैं। इसलिए नेता कभी कभार उन्ही मुद्दों के बारें में बात करते हैं, जिनसे लोग उत्तेजित हो जाएँ। फिर फ़र्क नहीं पड़ता की उन मुद्दों पर किसी नेता ने सच कहा कि झूठ। क्योंकि मुद्दा ज़रूरी हो जाता है, मुद्दे पर क्या कहा और किया गया वो नहीं। जैसे नोटबंदी के दौरान काला धन का मुद्दा महत्वपूर्ण हो गया, पर काला धन आया कि नहीं, उस पर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया। साल 2019 में जब 4 मुख्याधाराओं के टीवी चैनलों की 202 डिबेट्स का एक विश्लेषण किया गया तब पता चला की 79 डिबेट्स पाकिस्तान के ऊपर थी, 66 विपक्ष पर प्रहार करते हुए थी, 14 डिबेट्स राम मंदिर के मुद्दे पर थी और 36 डिबेट्स RSS/मोदी जी की प्रशंसा करते हुए थी। मतलब इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि ये मुद्दे ज़रूरी हैं कि नहीं, लेकिन क्योंकि सिर्फ इन्हीं मुद्दों पर बात हो रही है तो ये मुद्दे अपने आप ज़रूरी लगने लग जाते हैं।

सोशल मीडिया पर हमें लगातार उसी तरह की बातें दिखायी जाती हैं, जिनसे हम सहमत हो। तो हमें अपनी बातों को सही सिद्ध करने के लिए आसानी से वही तर्क मिल जाते हैं जिनसे हम पहले से ही सहमत हों।

इसको एक कहानी की तरह समझते हैं

राहुल गांधी को लगातार पिछले कई सालों तक एक सुनिर्देशित अभियान के तहत पप्पू कहा गया है। आपने हमने लगातार उनके ऊपर जोक्स बनाएँ हैं, मीम्स शेयर किए हैं, हँसी ठिठोली की है। पहला, क्योंकि हमारे आस पास के लोग मानते हैं कि वह पप्पू हैं तो हमें कुछ अलग सोचने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। इसलिए हम उनके बहुत सारे भाषणों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं , क्योंकि एक पप्पू की बातें सुनकर क्यों समय बर्बाद करें। फलस्वरूप हमारे पास उनके बारें में कोई नया डेटा नहीं आ पाता, इसलिए उनको लेकर हमारा दृष्टिकोण नहीं बदल पाता और हम उन्हें लगातार पप्पू मानते रहते हैं। दूसरा, किसी और की अगर ज़ुबान लड़खड़ाती है तो हम उसे माफ़ कर देते हैं पर हम वही छूट या आज़ादी राहुल को नहीं देते क्योंकि हमने मान लिया है कि उनकी भूल एक अपवाद नहीं बल्कि मानक है। तीसरी बात, हम हर बात की कल्पना नितांत में ही कर पाते हैं – जैसे अगर हमको ये मानना पड़े कि राहुल गांधी पप्पू नहीं है, तो हम सोचते हैं कि हमें यह मानना पड़ेगा कि वे अपूर्व बुद्धि के धनी हैं। लेकिन ऐसा नहीं है, ज़रूरी नहीं है कि जो पप्पू नहीं है वह जीनियस हो। इस सबके चलते राहुल की छवि को तो राजनैतिक नुक़सान हुआ होगा, पर हमारा तो सामाजिक नुक़सान हुआ है। उन्होंने तो चुनाव हारे या हमारे ताने सुने, हमने तो अपने सच देखने की क़ाबिलियत खो दी। **- मीडिया विजिल**

रेलवे को निजी हाथों में सौंपा जाना देश को बेचे जाने सरीखा है

❑ आशीष सक्सेना

रेलवे हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय उपक्रम है और रहेगा. ये उपक्रम देश के लाखों लोगों के आराम और सुविधा का खयाल बहुत आत्मीयता से रखता है. इसके साथ कर्मचारियों की बहुत बड़ी संख्या जुड़ी है, जिसके कल्याण की हमेशा फिक्र होना चाहिए. राष्ट्रीय स्वामित्व वाली रेलवे महज महत्वपूर्ण संपत्ति नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है.

—जवाहरलाल नेहरू, प्रथम प्रधानमंत्री

यही वह मंशा है, जिसके चलते रेलवे ने कभी गंगा के एक घाट से दूसरे घाट के स्टेशन तक पहुंचाने के लिए स्टीमर चलाया. काठगोदाम से नैनीताल के बीच तांगा चलवाया या फिर ट्रेन की बोगी में भी पुस्तकालय खुलवा दिया. तीन दशक पुरानी यादों को ज़हन में टटोला जाए तो बहुत सी यादगार बातें मिल जाएंगी.

फिलहाल, रेलवे में होने वाला बदलाव एकदम उलट तस्वीर है. जैसे रेलवे अब राष्ट्र की 'महत्वपूर्ण जिम्मेदारी नहीं, बल्कि महज बिकाऊ संपत्ति है'. यात्रियों को मिलने वाली सुविधा एहसान की तरह जताई जा रही है और हर सुविधा पर अतिरिक्त शुल्क हनक के साथ वसूलने का कायदा अमल में आ चुका है.

हाल ही में भारतीय रेल में पहली निजी ट्रेन 'तेजस' के ट्रैक पर दौड़ने के साथ ही भारतीय रेल के इतिहास में नया अध्याय लिखा गया. जल्द ऐसी ही 150 ट्रेनों और 50 स्टेशनों के भी निजी होने की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी. ये '100 दिन के एक्शन प्लान' के तहत हो रहा है या पहले से तय है, ये सरकार ही जानती है.

ऐसा उस रेल के इतिहास में हो रहा है, जिसने भारत में पहले उद्योग का दर्जा हासिल किया, जिसने किसानों को जमीन का बंधुआ होने से बचाकर मुक्त श्रमिक बनाया, जिसने देश को एक कोने से दूसरे कोने तक जोड़ा, जिसने जाति, धर्म के बंधनों को तोड़ने में मदद की, जिसने देश की गुलामी की जंजीरें तोड़ने में ऐतिहासिक भागीदारी की, जिसने लाखों परिवारों को व्यवस्थित जिंदगी जीने का मौका दिया, जिसने कितनी ही सत्ताओं, सरकारों के आने-जाने की परवाह किए बगैर अपना सफर जारी रखा.

कई पीढ़ियों के खून-पसीने से जारी रहा सफर

भारतीय रेल का करोड़ों लोगों को 'पीठ पर लादकर' दिन-रात का ये सफर तभी जारी रह सका, जब कई पीढ़ियों के करोड़ों लोगों का खून-पसीना इसमें शरीक हुआ, जिन्होंने इस सफर के लिए जान भी दी और सैनिकों की तरह मोर्चा संभाले रहे. हर साल दर्जनों की तादात में ट्रैकमैनों ने जिंदगी खोई, तो 'ट्रेन का ब्रेन' कहे जाने वाले एक-एक कंट्रोलर ने दो-दो दर्जन ट्रेनों का सफल संचालन कराके करोड़ों लोगों की जान बचाई.

आज वही रेल अपने कर्मचारियों और उसके मुसाफिरों से मानो कह रही है, 'ये आपकी संपत्ति नहीं, जिसकी आपको रक्षा करनी है, ये तो पराई हो रही है, जिसको कैसे चलना है, यह उसका मालिक तय करेगा.' अब किसी को शायद फुर्सत नहीं होगी कि 'अ गर्ल विद अ बास्केट' जैसी कहानी लिखे, 'हम वहशी हैं' जैसे सफर के दर्द को महसूस कराए.

रेल नहीं, कई देशों से बड़ा देश

आज 'देश की जीवन रेखा' कही जाने वाली रेलवे की उस यात्रा को साझा करने भर से पता चल सकता है कि ये महज रेल नहीं, अपने आप में एक देश है. कई देशों से बड़ा देश. अपनी आबादी, संस्कृति और इतिहास के हिसाब से भी. इसका एक हिस्सा बिकना भी देश का एक हिस्सा बिकने जैसा है. ऐसे में पूरी रेल का बिकना देश के बिकने जैसा ही होगा, अगर ऐसा हुआ तो. ये सच है कि अगर कोई कायदे से भारतीय रेल का इतिहास पढ़ ले तो उसे देश के इतिहास की 90 फीसदी समझ आ जाएगी. रेल ने देश में 'एकजुटता और संघर्ष' के सफर में मील के पत्थर गाड़े हैं.

'तेजस' के बेहतरीन और खुशबूदार शौचालय हों या देश में स्वच्छता मिशन की अलख. तथ्य ये है कि किसी भी तरह के शौचालय के बगैर भारत की ट्रेनें 55 साल दौड़ीं. कल्पना कीजिए, सफर में यात्रियों को खिड़कियों और दरवाजों से लटककर शौच को मजबूर होना पड़ा. काफी राजनीतिक दबाव और कुछ लोगों के आवाज उठाने के बाद अंग्रेज सरकार ने फर्श में एक छेद कराके प्रारंभिक शौचालय की व्यवस्था की.

ज्यादातर लोग यही जानते हैं कि देश की पहली ट्रेन बॉम्बे से ठाणे के बीच चली. नहीं, देश में पहली ट्रेन रुड़की और पिरान कलियर के बीच 22 दिसंबर 1851 को चली थी, किसानों की तत्कालीन सिंचाई समस्याओं को हल करने के लिए. बड़ी मात्रा में मिट्टी की आवश्यकता थी, जो रुड़की से 10 किमी दूर पिरान कलियर क्षेत्र में उपलब्ध थी, इसलिए वह ट्रेन चलायी गयी थी।

सुल्तान, सिंध और साहिब नाम के तीन लोकोमोटिव इंजनों से खींची गई 14 डिब्बे वाली पहली कॉमर्शियल ट्रेन 16 अप्रैल 1853 को बॉम्बे और ठाणे के बीच चली. भारत का पहला इलेक्ट्रिक लोको 1910 में सीमेंस द्वारा ओवरहेड विद्युत उपकरणों के साथ बैगनॉल्स द्वारा मैसूर गोल्ड फील्ड्स को वितरित किया गया था. पहली इलेक्ट्रिक ट्रेन बॉम्बे (विक्टोरिया टर्मिनस) और कुर्ला के बीच 16 किलोमीटर की दूरी पर 3 फरवरी 1925 को शहर के बंदरगाह मार्ग से चली थी.

119 साल पहले बनी सरकारी कंपनी

1845 में, सर जमशेदजी के साथ जगन्नाथ शंकर सेठ ने इंडियन रेलवे एसोसिएशन का गठन किया. 1900 में रेलवे सरकारी स्वामित्व वाली कंपनी बन गई. 1901 में प्रारंभिक रेलवे बोर्ड का गठन हुआ, जो वाणिज्य और उद्योग विभाग के अधीन था और इसमें एक सरकारी रेलवे अधिकारी बतौर अध्यक्ष हुआ करता था. इसके अलावा इंग्लैंड से एक रेलवे प्रबंधक और अन्य दो सदस्यों के रूप में कंपनी के एजेंट थे.

1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारत को काम चलाऊ रेल नेटवर्क विरासत में मिला. लगभग 40 फीसदी रेलवे लाइनें नए बने

पाकिस्तान में थीं. कई लाइनों को भारतीय क्षेत्र के माध्यम से फिर से जोड़ा जाना था. पूर्व भारतीय रियासतों के स्वामित्व वाली 32 लाइनों सहित कुल 42 अलग-अलग रेलवे सिस्टम 55 हजार किलोमीटर की सीमा में मौजूद थे.

1952 में मौजूदा रेल नेटवर्क को जोन में बदलने का निर्णय लिया गया. तब कुल छह जोन अस्तित्व में आए. जैसे-जैसे भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था विकसित की, लगभग सभी रेलवे उत्पादन इकाइयां स्वदेशी निर्माण करने लगीं. रेलवे ने अपनी लाइनों को बदलना शुरू कर दिया. 6 सितंबर 2003 को मौजूदा जोन से छह और जोन बनाए गए और 2006 में एक और जोन जोड़ा गया. भारतीय रेलवे में अब कोलकाता मेट्रो सहित 17 जोन हैं.

अनचाहे पढ़ा दिया सामूहिकता का पाठ

रेलवे अंग्रेजों के लिए फायदे का सौदा था. रेल कच्चे माल को देश भर से ढोकर इंग्लैंड का खजाना भरने के काम में लग गई. चाहे-अनचाहे बहुत से लोगों को भी दूसरे क्षेत्रों में जाने का मौका मिला, मजदूर बतौर ही सही. बाद में यात्री गाड़ियों की भी शुरुआत हुई और बड़ी संख्या में रेल संचालन से लेकर रखरखाव में लोगों को इस उपक्रम में रोजगार मिला. बेशक, हालात बहुत विपरीत थे, लेकिन सामूहिकता का पाठ भी तो पढ़ने को मिला. ये सामूहिकता दो दशक पहले तक रेलवे कॉलोनियों की आबोहवा में समाई थी.

एक जमाने में यही रेल विदेशी हुकूमत के खिलाफ लामबंदी का जरिया ही बन गई. क्रांतिकारियों का काकोरी केस, भगत सिंह का हुलिया बदलकर जाना, गांधी जी का देश भर में भ्रमण, अन्य नेताओं का भी इसी तरह गोलबंदी का प्रयास ट्रेन यात्रा से सुगम हो गया.

रेलकर्मियों ने रखी श्रमिक संघर्ष की बुनियाद

रेलकर्मियों ने आधुनिक श्रमिक संघर्ष की न सिर्फ बुनियाद रखी, बल्कि अपनी सूझ-बूझ से कायल कर दिया. पूरी दुनिया 8 घंटे काम की मांग के लिए 1886 में शिकागो में हुए मजदूर आंदोलन की याद में मई दिवस मनाती है. इस तथ्य से बहुत कम लोग वाकिफ हैं कि शिकागो के आंदोलन से काफी पहले भारतीय रेलवे के कर्मचारियों ने अप्रैल और मई 1862 में इसी मुद्दे पर पहली बार हड़ताल की. इसी प्रभाव में उसी साल बैलगाड़ी चालक ऐतिहासिक हड़ताल पर चले गए, जिसके बाद कई श्रमिक आंदोलनों ने ताकत दिखाई. 1906 में ईस्ट इंडिया रेलवे की मालगाड़ियों के गार्ड्स ने जीत हासिल की.

18 नवंबर 1907, भारतीय मजदूर आंदोलन के उद्घोष में एक ऐतिहासिक दिन था, जब बंगाल के आसनसोल में रेलकर्मियों ने अपने 43 प्वाइंट चार्टर के समर्थन में संघर्ष छेड़ दिया. यह हड़ताल पूरे देश में तेजी से फैल गई थी और कोई भी ट्रेन कई दिन कलकत्ता नहीं पहुंच सकी. कलकत्ता बंदरगाह पर सन्नाटा पसर गया क्योंकि पोर्ट के कर्मचारियों ने भी हड़ताली रेलकर्मियों के समर्थन में एकजुटता दिखाकर काम रोक दिया.

11 फरवरी 1927 को बंगाल में खड़गपुर डिवीजन में रेलवेकर्मियों ने बड़े पैमाने पर हड़ताल की. इसी असर में हावड़ा जिले के लिलुआ के रेलकर्मियों ने 28 मार्च 1928 से काम बंद कर दिया और उनकी मांगों को पूरा किया गया. पहली बार संभवतः 1927 से भारत में मजदूरों के संघर्ष के उद्घोष में मई दिवस समारोह मजदूरों के अधिकारों का दावा करने का हिस्सा बना. संघर्षों का ये क्रम जारी रहा.

आजाद भारत में भी बेरहमी से हुआ रेलकर्मियों का दमन

ऑल इंडिया रेलवे मेंस फेडरेशन (एआईआरएफ) 1925 में भारतीय रेलवे में स्थापित पहला संघ बना, जो सोशलिस्ट ट्रेड यूनियन सेंटर हिंद मजदूर सभा से संबद्ध है. 1940 के उत्तरार्ध तक, एआईआरएफ में समाजवादी और कम्युनिस्टों का प्रभाव था. 1947 और 1953 के बीच संघ के अध्यक्ष लोकनायक जयप्रकाश नारायण थे, जबकि पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री रहे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ज्योति बसु उपाध्यक्ष थे. इस बात से चिंतित होकर सत्ता में रही कांग्रेस पार्टी ने 1948 में अपनी विंग इंडियन नेशनल रेलवे वर्कर्स फेडरेशन (आईएनआरडब्ल्यूएफ) बनाई. मार्च 1949 में एआईआरएफ ने हड़ताल की तैयारी की, लेकिन सरकार से समझौते के बाद नोटिस वापस लेने ही वाली थी कि एआईआरएफ में मौजूद कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े नेताओं ने आंदोलन की शुरुआत कर दी.

आंदोलन तोड़ने के लिए सरकार ने सैन्य बलों को उतार दिया, सात हजार श्रमिकों को गिरफ्तार करने के साथ ही दो हजार श्रमिकों को बर्खास्त कर दिया गया. इस घटना के बाद एआईआरएफ से कम्युनिस्ट यूनियनों और कम्युनिस्ट विचार रखने वालों को निष्कासित कर दिया गया. 1953 में एआईआरएफ ने राष्ट्रीय संघ बनाने के लिए आईएनआर-डब्ल्यूएफ के साथ एकता करके नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन रेलवेमेन (एनएफ-आईआर) बना ली. लेकिन यह एकता कुछ ही समय तक टिकी और दो साल बाद 1955 में एआईआरएफ फिर 'स्वतंत्र' होकर काम करने लगी.

74 की हड़ताल के बाद बदल गया रुख

मई 1974 में एआईआरएफ के अध्यक्ष जॉर्ज फर्नांडीज ने देश भर में रेलवे स्ट्राइक का नेतृत्व किया, जिसका भारत सरकार ने दमन कर दिया. इस हड़ताल ने देश के पूरे राजनीतिक ताने-बाने को हिलाकर रख दिया और पूरे देश में आंदोलनों के एक नए ज्वार की शुरुआत की. इसके बावजूद एआईआरएफ और एनएफआईआर को बिना चुनाव लगातार मान्य होने का 'लाभ' मिलता रहा. आंदोलन के नाम पर खानापूर्ति होने लगी और श्रमिक अधिकारों में कटौती चालू हो गई. धीरे-धीरे करके ठेकाकरण की प्रक्रिया भी चलने लगी.

यूनियन नेताओं की 'सरकार से नजदीकियों' ने ये नौबत ला दी है कि आज किसी भी रेल यूनियन में निजीकरण के खिलाफ एक जगह पांच-दस हजार लोगों को जमा करने का बूता नहीं बचा है, जबकि आज भी इस उपक्रम में करीब 13 लाख कर्मचारी कार्यरत हैं. 2007 में, भारतीय रेलवे को सुप्रीम कोर्ट ने पहली बार गुप्त मतपत्र से चुनाव कराने का आदेश दिया. इस नाजुक वक्त में भी अधिकांश रेल कर्मचारी नेता यूनियन की मान्यता और चुनाव के जरिए 'सरकारी लाभ' लेने को दौड़ लगा रहे हैं.

-द प्रिंट

31 जुलाई : प्रेमचंद जयंती

जब प्रेमचंद ने गांधी का भाषण सुनकर सरकारी नौकरी छोड़ दी

❑ मनोज सिंह

वह असहयोग आंदोलन का ज़माना था, प्रेमचंद गंभीर रूप से बीमार थे. बेहद तंगी थी, बावजूद इसके गांधी जी के भाषण के प्रभाव में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ने का निर्णय लिया था. उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का गोरखपुर से गहरा संबंध है. उनके बचपन के चार वर्ष वहां बीते तो जवानी के साढ़े चार वर्ष भी. वह गोरखपुर में पढ़े और यहां के नॉर्मल स्कूल में बच्चों को पढ़ाया भी. वहीं उनकी मुलाकात महावीर प्रसाद पोद्दार से हुई, जिन्होंने अपने कलकत्ता स्थित प्रकाशन हिन्दी पुस्तक एजेंसी से प्रेमचंद की प्रेम पचीसी, सेवासदन और प्रेमाश्रम को प्रकाशित किया.

गोरखपुर में ही उनकी मशहूर शायर रघुपति सहाय फिराक़ से दोस्ती हुई. गोरखपुर में ही उन्होंने गांधी जी का भाषण सुनने के बाद सरकारी नौकरी छोड़ दी. नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने जीवन-निर्वाह के लिए करघे का कारखाना चलाया और गोरखपुर से हिन्दी व उर्दू में अखबार निकालने की योजना बनाते रहे. अखबार निकालने की योजना सफल न हो पाने के बाद वह अपने गांव लमही चले गए.

प्रेमचंद गोरखपुर आने के पहले उर्दू के एक प्रतिष्ठित कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे. इसी वर्ष हिन्दी में उनकी कहानी पंच परमेश्वर छपी थी. गोरखपुर में रहते हुए प्रेमचंद ने शिक्षण कार्य के साथ-साथ अपनी पढ़ाई जारी रखी और बीए किया.

फिराक़ साहब इन्हीं दिनों प्रेमचंद से मिले थे. इस मुलाकात का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है, 'जब मैं पहली बार उनसे मिला था तब वह एक मुदर्रिस की हैसियत से प्राइवेट तौर पर इंटरमीडिएट का इम्तेहान दूसरे दरजे में पास कर चुके थे. जब 1919 में वह 'प्रेमाश्रम' लिख रहे थे, तब वह स्कूल में पढ़ाते भी थे और बोर्डिंग हाउस के सुपरिटेंडेट का भी काम करते थे. फिर इसी बीच उन्होंने बीए की डिग्री भी हासिल कर ली. उन्होंने अपने सारे जीवन में कभी एक विद्यार्थी के रूप में किसी कॉलेज में पैर भी नहीं रखा.'

प्रेमचंद बहुत स्वाभिमानी थे. गोरखपुर की दो घटनाओं से इसका जिक्र मिलता है. एक बार उनके स्कूल में निरीक्षण करने स्कूल इंस्पेक्टर आया. पहले दिन प्रेमचंद उसके साथ पूरे समय स्कूल में रहे. दूसरे दिन शाम को वह अपने घर पर आरामकुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे. इंस्पेक्टर की मोटरकार उधर गुजरी. इंस्पेक्टर को उम्मीद थी कि प्रेमचंद उठकर उन्हें सलाम करेंगे लेकिन ऐसा कुछ न हुआ. इंस्पेक्टर ने गाड़ी रोक दी और अर्दली को भेजकर बुलवाया. शिवरानी देवी इस घटना का वर्णन करते हुए लिखती हैं कि इंस्पेक्टर के सामने जाकर प्रेमचंद बोले, 'कहिए क्या है?

इंस्पेक्टर ने कहा, 'तुम बड़े मग़रूर हो. तुम्हारा अफसर दरवाजे से निकला जाता है और तुम उठकर सलाम भी न करते?' प्रेमचंद बोले, मैं जब स्कूल में रहता हूं, तब नौकर हूं. बाद में मैं भी अपने घर का बादशाह हूं.' इस घटना से प्रेमचंद आहत हुए थे और इंस्पेक्टर के खिलाफ मानहानि का केस करने पर विचार करने लगे. शिवरानी देवी ने किसी तरह उन्हें मनाया.

प्रेमचंद के गोरखपुर वाले घर के पास ही कलेक्टर का आवास था. प्रेमचंद ने गाय पाल रखी थी. एक दिन गाय कलेक्टर के अहाते में चली गई. कलेक्टर बहुत नाराज हुआ. उसने कहा कि प्रेमचंद आकर अपनी गाय ले जाएं नहीं तो मैं गोली मार दूंगा. इस बात की जानकारी जब स्कूल के लड़कों को हुई तो वे कलेक्टर के बंगले पर एकत्र हो गए और नाराजगी प्रकट करने लगे. प्रेमचंद भी पहुंचे. सबसे पहले उन्होंने छात्रों को वहां से जाने को कहा. छात्र बोले कि बगैर गाय लिए नहीं जाएंगे. इसी बीच एक लड़के ने कहा कि गाय को गोली मार दी गई तो खून की नदी बह जाएगी. एक मुसलमान गोली मार देता है तो खून की नदियां बह जाती हैं.

प्रेमचंद ने उस लड़के को डांटा. बोले, 'फौज वाले तो रोज गाय, बछड़े मार-मारकर खाते हैं, तब तुम लोग सोते हो? यह तो गलती है कि मुसलमानों की एक कुर्बानी पर सैकड़ों हिंदू-मुसलमान मरते-मारते हैं. गाय तुम्हारे लिए जितनी जरूरी है, मुसलमानों के लिए भी उतनी ही जरूरी है.'

इसके बाद प्रेमचंद कलेक्टर के पास गए. बोले, 'आपने मुझे क्यों याद किया?' कलेक्टर ने कहा, 'तुम्हारी गाय मेरे हाते में आई. मैं उसे गोली मार देता. हम अंग्रेज हैं.'

प्रेमचंद ने कहा, 'साहब, आपको गोली मारनी थी तो मुझे क्यों बुलाया? आप जो चाहे सो करते. या मेरे खड़े रहते गोली मारते?'

कलेक्टर, 'हां, हम अंग्रेज हैं, कलेक्टर हैं. हमारे पास ताकत है. हम गोली मार सकते हैं.'

प्रेमचंद- 'आप अंग्रेज हैं, कलेक्टर हैं. सब कुछ हैं, पर पब्लिक भी तो कोई चीज है.'

कलेक्टर, 'मैं आज छोड़ देता हूं. आइंदा आई तो गोली मार दूंगा.'

'आप गोली मार दीजिएगा. ठीक है, पर मुझे न याद कीजिएगा.' यह कहते हुए प्रेमचंद चले आए.

गोरखपुर में प्रेमचंद गंभीर रूप से बीमार पड़े. ऐसी स्थिति हो गई कि बचने की आशा न रही. इस दौरान 8 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी गोरखपुर आए. प्रेमचंद पत्नी और बच्चों के साथ गांधी जी का भाषण सुनने गए. और 16 फरवरी 1921 को प्रेमचंद ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया, सरकारी मकान भी छोड़ दिया.

फिराक़ गोरखपुरी ने प्रेमचंद के नौकरी से इस्तीफा देने के बारे में लिखा है, 'यदि वह नौकरी करते रहते तो निश्चित है कि आज वह अपने महकमे में काफी तरक्की कर चुके होते और उनकी गिनती इस सूबे के शिक्षा विभाग के बड़े अफसरों में होती लेकिन सन 1919 के असहयोग आंदोलन के समय, जब उनकी अवस्था 30 वर्ष से कुछ अधिक हो चुकी थी, मेरे यूपी सिविल सर्विस की नौकरी छोड़ने के कुछ ही हफ्तों बाद वह भी सरकारी नौकरी से अलग हो गए.'

शिवरानी देवी बनारस चलने के मूड में थीं जबकि प्रेमचंद गोरखपुर में महावीर प्रसाद पोद्दार की मदद से उर्दू व हिन्दी का अखबार निकालने की योजना बनाए हुए थे. नौकरी और सरकारी मकान छोड़ने के बाद प्रेमचंद परिवार सहित मानीराम में पोद्दार के घर चले गए.

नौकरी छोड़ने के एक सप्ताह बाद 23 फरवरी 1921 को को लिखे एक पत्र में प्रेमचंद ने अपनी यह मंशा जाहिर की थी. उन्होंने लिखा, 'किसी तरह अब मैं आजाद हो गया.

अब बतलाइए क्या करूं. प्रेस और अखबारनवीसी और कुतुबनवीसी के सिवा मैं किसी दूसरे काम के काबिल नहीं. कपड़े बुनने के लिए तैयार नहीं. काश्तकारी मेरे किए हो ही नहीं सकती. क्या आपका इरादा अब भी प्रेस की तरफ है? मैं चार-पांच हजार का सरमाया और अपना सारा वक्त आपके नज्र करने को तैयार हूं, बशर्ते कि आप भी मेरे मुआविन सहयोगी और शरीक हों. मैं एक अच्छा प्रेस उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी का खेलना चाहता हूं.'

महावीर प्रसाद पोद्दार के यहां प्रेमचंद दो महीने रहे. शिवरानी देवी के अनुसार, 'यहां हम लोगों के दिन बहुत अच्छे कटे. ऐसा मालूम होता था कि पोद्दार जी और हम सब एक ही हैं. पोद्दार जी ने हमारी काफी सेवा की. उन्हीं की सेवा की वजह से वे जल्दी तंदुरुस्त हुए. पोद्दार जी रोज 13 मील दूर शहर जाते. बाबूजी दरवाजे पर बैठे-बैठे चरखे बनवाते और लिखते-पढ़ते.

दो महीना रहने के बाद तय हुआ कि पोद्दार जी के साझे में शहर में चरखे की दुकान खोली जाए और एक मकान वहां लिया जाए. उसी जगह दस करघे लगाए गए. चर्खा चलाने वाली कुछ औरतें भी थीं. देहात से बनकर चरखे आते थे, वे बेचे भी जाते थे. शाम के वक्त पोद्दारजी और बाबूजी तथा और कुछ मित्र लोग बैठ गपशप करते.

प्रेमचंद ने निगम जी करघे की दुकान के बारे में लिखा है कि मैंने फिलहाल एक कपड़े का कारखाना खोल रखा है, जिसमें करघे चल रहे हैं. कुछ चरखे वगैरह बनवाए भी जा रहे हैं. एक मैनेजर पचीस रुपये माहवार पर रख लिया है. गो उससे मुझे माहवार कुछ न कुछ नफा जरूर होगा, लेकिन इतना नहीं कि मैं उस पर तकिया कर सकूं.'

प्रेमचंद गोरखपुर से उर्दू अखबार निकालने में सफल नहीं हो पाए. इसका कारण यह था कि गोरखपुर से बंद एक उर्दू साप्ताहिक फिर से शुरू हो गया. प्रेमचंद का मानना था कि इस उर्दू अखबार के फिर जारी हो जाने से इसकी मौजूदगी में किसी किसी दूसरे हफ्तेवार की खपत नहीं हो सकेगी. गोरखपुर से अखबार नहीं निकाल पाने का सपना उन्होंने बनारस जाकर पूरा किया. गोरखपुर से वापस जब वह लमही गए तो एक बार फिर उन्होंने चरखे के प्रचार का काम किया. उन्होंने चरखे बनवाये, लोगों में बांटे और आजादी की लड़ाई में पूरे गांव को जोड़ दिया। लमही आजादी का दिया बन गया। **-द वायर हिन्दी**

कहानी

सभ्यता का रहस्य

❑ प्रेमचंद

कथा सम्राट प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पंच परमेश्वर' हम सबने पढ़ी है। उस कहानी के माध्यम से कथाकार ने न्याय और न्यायकर्ता के उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की स्थापना की है। 'सभ्यता का रहस्य' 'पंच परमेश्वर' की तुलना में कम पढ़ी गयी है, कम चर्चित रही है, किन्तु यह सिक्के का दूसरा पहलू दिखाती है। न्याय और न्यायकर्ता बिकाऊ भी होते हैं और अंतहीन शोषण के औंजार भी, यह तब भी हो रहा था, जब प्रेमचंद लिख रहे थे और देश महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। **-सं.**

यों तो मेरी समझ में दुनिया की एक हजार एक बातें नहीं आती—जैसे लोग प्रातःकाल उठते ही बालों पर छुरा क्यों चलाते हैं? क्या अब पुरुषों में भी इतनी नजाकत आ गयी है कि बालों का बोझ उनसे नहीं सँभलता? एक साथ ही सभी पढ़े-लिखे आदमियों की आँखें क्यों इतनी कमजोर हो गयी है? दिमाग की कमजोरी ही इसका कारण है या और कुछ? लोग खिताबों के पीछे क्यों इतने हैरान होते हैं? इत्यादि—लेकिन इस समय मुझे इन बातों से मतलब नहीं। मेरे मन में एक नया प्रश्न उठ रहा है और उसका जवाब मुझे कोई नहीं देता। प्रश्न यह है कि सभ्य कौन है और असभ्य कौन? सभ्यता के लक्षण क्या हैं? सरसरी नजर से देखिए, तो इससे ज्यादा आसान और कोई सवाल ही न होगा। बच्चा-बच्चा इसका समाधान कर सकता है। लेकिन जरा गौर से देखिए, तो प्रश्न इतना आसान नहीं जान पड़ता। अगर कोट-पतलून पहनना, टाई-हैट, कालर लगाना, मेज पर बैठकर खाना खाना, दिन में तेरह बार कोको या चाय पीना और सिगार पीते हुए चलना सभ्यता है, तो उन गोरों को भी सभ्य कहना पड़ेगा, जो सड़क पर बैठकर शाम को कभी-कभी टहलते नजर आते हैं; शराब के नशे से आँखें सुर्ख, पैर लड़खड़ाते हुए, रास्ता चलने वालों को अनायास छेड़ने की धुन! क्या उन गोरों को सभ्य कहा जा सकता है? कभी नहीं। तो यह सिद्ध हुआ कि सभ्यता कोई और ही चीज है, उसका देह से इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना मन से।

× × ×

मेरे इने-गिने मित्रों में एक राय रतनकिशोर भी हैं। वे बहुत ही सहृदय, बहुत ही उदार, बहुत शिक्षित और बड़े ओहदेदार हैं। बहुत अच्छा वेतन पाने पर भी उनकी आमदनी खर्च के लिए काफी नहीं होती। एक चौथाई वेतन तो बँगले ही की भेंट हो जाती है। इसलिए वे बहुधा चिंतित रहते हैं। रिश्वत नहीं लेते—कम-से-कम मैं नहीं जानता, हालाँकि कहने वाले कहते हैं—लेकिन इतना जानता हूँ कि वह भत्ता बढ़ाने के लिए दौरे पर बहुत रहते हैं, यहाँ तक कि इसके लिए हर साल बजट के किसी दूसरे मद से रुपये निकालने पड़ते हैं। उनके अफसर कहते हैं, इतने दौरे क्यों करते हो, तो जवाब देते हैं, इस जिले का काम ही ऐसा है कि जब तक खूब दौरे न किए जाएँ, रिआया शांत नहीं रह सकती। लेकिन मजा तो यह है कि राय साहब उतने दौरे वास्तव में नहीं करते, जितने कि अपने रोजनामचे में लिखते हैं। उनके पड़ाव शहर से पचास मील पर होते हैं। खेमे वहाँ गड़े रहते हैं, कैंप के अमले वहाँ पड़े रहते हैं और राय साहब घर पर मित्रों के साथ गप-शप करते रहते हैं, पर किसी की मजाल है कि राय साहब की नेकनीयती पर सन्देह कर सके। उनके सभ्य पुरुष होने में किसी को शंका नहीं हो सकती।

एक दिन मैं उनसे मिलने गया। उस समय वह अपने घसियारे दमड़ी को डाँट रहे थे। दमड़ी रात-दिन का नौकर था, लेकिन घर रोटी खाने जाया करता था। उसका घर थोड़ी ही दूर पर एक गाँव में था। कल रात को किसी कारण से यहाँ न आ सका। इसलिए डाँट पड़ रही थी।

राय साहब—जब हम तुम्हें रात-दिन के लिए रखे हुए हैं, तो तुम घर पर क्यों रहे? कल के पैसे कट जायेंगे।

दमड़ी—हजूर, एक मेहमान आ गये थे, इसी से न आ सका।

राय साहब—तो कल के पैसे उसी मेहमान से लो।

दमड़ी—सरकार, अब कभी ऐसी खता न होगी।

राय साहब—बक-बक मत करो।

दमड़ी—हजूर.....

राय साहब—दो रुपये जुरमाना।

दमड़ी रोता चला गया। रोजा बख्शाने आया था, नमाज़ गले पड़ गयी। दो रुपये जुरमाना ठुक गया। खता यही थी कि बेचारा कसूर माफ कराना चाहता था।

यह एक रात को गैरहाजिर होने की सजा थी! बेचारा दिन-भर का काम कर चुका था, रात को यहाँ सोया न था, उसका दण्ड! और घर बैठे भत्ते उड़ाने वाले को कोई नहीं पूछता! कोई दंड नहीं देता। दंड तो मिले और ऐसा मिले कि जिंदगी-भर याद रहे; पर पकड़ना ही मुश्किल है। दमड़ी भी अगर होशियार होता, तो जरा रात रहे आकर कोठरी में सो जाता। फिर किसे खबर होती कि वह रात को कहाँ रहा। पर गरीब इतना चंट न था।

× × ×

दमड़ी के पास कुल छः बिस्वे जमीन थी। पर इतने ही प्राणियों का खर्च भी था। उसके दो लड़के, दो लड़कियाँ और स्त्री, सब खेती में लगे रहते थे, फिर भी पेट की रोटियाँ नहीं मयस्सर होती थीं। इतनी जमीन क्या सोना उगल देती ! अगर सब-के-सब घर से निकल मजदूरी करने लगते, तो आराम से रह सकते थे; लेकिन मौरूसी किसान मजदूर कहलाने का अपमान न सह सकता था। इस बदनामी से बचने के लिए दो बैल बाँध रखे थे! उसके वेतन का बड़ा भाग बैलों के दाने-चारे ही में उड़ जाता था। ये सारी तकलीफें मंजूर थीं, पर खेती छोड़कर मजदूर बन जाना मंजूर न था। किसान की जो प्रतिष्ठा है, वह कहीं मजदूर की हो सकती है, चाहे वह रुपया रोज ही क्यों न कमाये? किसानी के साथ मजदूरी करना इतने अपमान की बात नहीं, द्वार पर बँधे हुए बैल उसकी मान-रक्षा किया करते हैं, पर बैलों को बेचकर फिर कहाँ मुँह दिखलाने की जगह रह सकती है!

एक दिन राय साहब उसे सरदी से काँपते देखकर बोले—कपड़े क्यों नहीं बनवाता? काँप क्यों रहा है?

दमड़ी—सरकार, पेट की रोटी तो पूरा ही नहीं पड़ती, कपड़े कहाँ से बनवाऊँ?

राय साहब—बैलों को बेच क्यों नहीं डालता? सैकड़ों बार समझा चुका, लेकिन न-जाने क्यों इतनी मोटी-सी बात तेरी समझ में नहीं आती।

दमड़ी—सरकार, बिरादरी में कहीं मुँह दिखाने लायक न रहूँगा। लड़की की सगाई न हो पायेगी, जात बाहर कर दिया जाऊँगा।

राय साहब—इन्हीं हिमाकतों से तुम लोगों की यह दुर्गति हो रही है। ऐसे आदमियों पर दया करना भी पाप है। (मेरी तरफ फिर कर) क्यों मुंशीजी, इस पागलपन का भी कोई इलाज है? जाड़ों मर रहे हैं, पर दरवाजे पर बैल जरूर बाँधेंगे।

मैंने कहा—जनाब, यह तो अपनी-अपनी समझ है।

राय साहब—ऐसी समझ को दूर से सलाम कीजिए। मेरे यहां कई पुश्तों से जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता था। कई हजार रुपयों पर पानी फिर जाता था। गाना होता था; दावतें होती थीं, रिश्तेदारों को न्योते दिये जाते थे, गरीबों को कपड़े बाँटे जाते थे। वालिद साहब के बाद पहले ही साल मैंने उत्सव बन्द कर दिया। फायदा क्या? मुफ्त में चार-पाँच हजार की चपत खानी पड़ती थी। सारे कस्बे में बावेला मचा, आवाजें कसी गयीं, किसी ने नास्तिक कहा, किसी ने ईसाई बनाया लेकिन यहाँ इन बातों की क्या परवा! आखिर थोड़े ही दिनों में सारा कोलाहल शान्त हो गया। अजी, बड़ी दिल्लगी थी। कस्बे में किसी के यहाँ शादी हो, लकड़ी मुझसे ले! पुश्तों से यह रस्म चली आती थी। वालिद तो दूसरों से दरख्त मोल लेकर इस रस्म को निभाते थे। थी हिमाकत या नहीं? मैंने फौरन लकड़ी देना बन्द कर दिया। इस पर भी लोग बहुत रोये-धोये, लेकिन दूसरों का रोना-धोना सुनूँ, या अपना फायदा देखूँ। लकड़ी से कम-से-कम 500 रुपये सलाना की बचत हो गयी। अब कोई भूलकर भी इन चीजों के लिए दिक करने नहीं आता।

मेरे दिल में फिर सवाल पैदा हुआ, दोनों में कौन सभ्य है, कुल-प्रतिष्ठा पर प्राण देने वाला मूर्ख दमड़ी; या धन पर कुल-मर्यादा की बलि देने वाले राय रतन किशोर!

× × ×

राय साहब के इजलास में एक बड़े मार्के का मुकदमा पेश था। शहर का एक रईस खून के मामले में फँस गया था। उसकी जमानत के लिए राय साहब की खुशामदें होने लगीं। इज्जत की बात थी। रईस साहब का हुक्म था कि चाहे रियासत बिक जाय, पर इस मुकदमे से बेदाग निकल जाऊँ। डालियाँ लगाई गयीं, सिफारिशें पहुँचाई गयीं, पर राय साहब पर कोई असर न हुआ। रईस के आदमियों को प्रत्यक्ष रूप से रिश्वत की चर्चा करने की हिम्मत न पड़ती थी। आखिर जब कोई बस न चला, तो रईस की स्त्री ने राय साहब की स्त्री से मिलकर सौदा पटाने की ठानी।

रात के दस बजे थे। दोनों महिलाओं में बातें होने लगीं। 20 हजार की बातचीत थी! राय साहब की पत्नी तो इतनी खुश हुईं कि उसी वक्त राय साहब के पास दौड़ी हुई आयीं और कहनें लगी—ले लो, ले लो।

राय साहब ने कहा—इतनी बेसब्र न हो। वह तुम्हें अपने दिल में क्या समझेंगी? कुछ अपनी इज्जत का भी खयाल है या नहीं? माना कि रकम बड़ी है और इससे मैं एकबारगी तुम्हारी आये दिन की फरमाइशों से मुक्त हो जाऊँगा, लेकिन एक सिविलियन की इज्जत भी तो कोई मामूली चीज नहीं है। तुम्हें पहले बिगड़कर कहना चाहिए था कि मुझसे ऐसी बेहूदी बातचीत करनी हो, तो यहाँ से चली जाओ। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

स्त्री—यह तो मैंने पहले ही किया, बिगड़कर खूब खरी-खोटी सुनायी। क्या इतना

भी नहीं जानती? बेचारी मेरे पैरों पर सर रखकर रोने लगी।

राय साहब—यह कहा था कि राय साहब से कहूँगी, तो मुझे कच्चा ही चबा जायेंगे? यह कहते हुए राय साहब ने गदगद होकर पत्नी को गले लगा लिया।

स्त्री—अजी, मैं न-जाने ऐसी कितनी ही बातें कह चुकी, लेकिन किसी तरह टाले नहीं टलती। रो-रोकर जान दे रही है।

राय साहब—उससे वादा तो नहीं कर लिया?

स्त्री—वादा? मैं तो रुपये लेकर सन्दूक में रख आयी। नोट थे।

राय साहब—कितनी जबरदस्त अहमक हो, न मालूम ईश्वर तुम्हें कभी समझ भी देगा या नहीं।

स्त्री—अब क्या देगा? देना होता, तो पहले ही न दे देता।

राय साहब—हाँ मालूम तो ऐसा ही होता है। मुझसे कहा तक नहीं और रुपये लेकर सन्दूक में दाखिल कर लिए ! अगर किसी तरह बात खुल जाय, तो कहीं का न रहूँ।

स्त्री—तो तुम सोच लो। अगर कुछ गड़बड़ हो, तो मैं जाकर रुपये लौटा दूँ।

राय साहब—फिर वही हिमाकत ! अरे, अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। ईश्वर पर भरोसा करके जमानत देनी पड़ेगी। लेकिन तुम्हारी हिमाकत में शक नहीं। जानती हो, यह साँप के मुँह में उँगली डालना है। यह भी जानती हो कि मुझे ऐसी बातों से कितनी नफरत है, फिर भी बेसब्र हो जाती हो। अबकी बार तुम्हारी हिमाकत से मेरा व्रत टूट रहा है। मैंने दिल में ठान लिया था कि अब इस मामले में हाथ न डालूँगा, लेकिन तुम्हारी हिमाकत के मारे मेरी कुछ चलने भी पाये तब न!

स्त्री—मैं जाकर लौटाये देती हूँ।

राय साहब—और मैं जाकर जहर खाये लेता हूँ।

इधर तो स्त्री-पुरुष में यह अभिनय हो रहा था, उधर दमड़ी उसी वक्त अपने गाँव के मुखिया के खेत से जुआर काट रहा था। आज वह रात-भर की छुट्टी लेकर घर गया था। बैलों के लिए चारे का एक तिनका भी नहीं है। अभी वेतन मिलने में कई दिन की देर थी, मोल ले न सकता था। घर वालों ने दिन को कुछ घास छीलकर खिलायी तो थी, लेकिन ऊँट के मुँह में जीरा। उतनी घास से क्या हो सकता था। दोनों बैल भूखे खड़े थे। दमड़ी को देखते ही दोनों पूँछें खड़ी करके हुँकारने लगे। जब वह पास गया तो दोनों उसकी हथेलियाँ चाटने लगे। बेचारा दमड़ी मन मसोसकर रह गया। सोचा, इस वक्त तो कुछ हो नहीं सकता, सबेरे किसी से कुछ उधार लेकर चारा लाऊँगा।

लेकिन जब ग्यारह बजे रात उसकी आँखें खुलीं, तो देखा कि दोनों बैल अभी तक नाँद पर खड़े हैं। चाँदनी रात थी, दमड़ी को जान पड़ा कि दोनों उसकी ओर अपेक्षा और याचना की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी क्षुधा-वेदना देखकर उसकी आँखें सजल हो आयीं। किसान को अपने बैल अपने लड़कों की तरह प्यारे होते हैं। वह उन्हें पशु नहीं, अपना मित्र और सहायक समझता है। बैलों को भूखे खड़े देखकर नींद आँखों से भाग गयी। कुछ सोचता हुआ उठा। हँसिया निकाली और चारे की फिक्र में चला। गाँव के बाहर बाजरे और जुआर के खेत खड़े थे। दमड़ी के हाथ काँपने लगे। लेकिन बैलों की याद ने उसे उत्तेजित कर दिया। चाहता, तो कई बोझ काट सकता था; लेकिन वह चोरी करते हुए भी चोर न था। उसने केवल उतना ही चारा काटा, जितना बैलों को रात-भर के लिए काफी हो। सोचा, अगर किसी ने देख भी लिया, तो उससे कह दूँगा, बैल भूखे थे, इसलिए काट लिया। उसे विश्वास था कि थोड़े-से चारे के लिए कोई मुझे पकड़ नहीं सकता। मैं कुछ बेचने के लिए तो काट नहीं रहा हूँ; फिर ऐसा निर्दयी कौन है, जो मुझे पकड़ ले। बहुत करेगा, अपने दाम ले लेगा। उसने बहुत सोचा। चारे का थोड़ा होना ही उसे चोरी के अपराध से बचाने को काफी था। चोर उतना ही काटता, जितना उससे उठ सकता। उसे किसी के फायदे और नुकसान से क्या मतलब? गाँव के लोग दमड़ी को चारा लिये जाते देखकर बिगड़ते जरूर, पर कोई चोरी के इल्जाम में न फँसाता, लेकिन संयोग से हल्के के थाने का सिपाही उधर जा निकला। वह पड़ोस के एक बनिये के यहाँ जुआ होने की खबर पाकर कुछ ऐंठने की टोह में आया था। दमड़ी को चारा सिर पर उठाते देखा, तो सन्देह हुआ। इतनी रात गये कौन चारा काटता है? हो न हो, कोई चोरी से काट रहा है, डाँटकर बोला—कौन चारा लिए जाता है? खड़ा रह!

दमड़ी ने चौककर पीछे देखा, तो पुलिस का सिपाही! हाथ-पाँव फूल गये, काँपते हुए बोला—हुजूर, थोड़ा ही-सा काटा है, देख लीजिए।

सिपाही—थोड़ा काटा हो या बहुत, है तो चोरी। खेत किसका है?

दमड़ी—बलदेव महतो का।

सिपाही ने समझा था, शिकार फँसा, इससे कुछ ऐंठूँगा; लेकिन वहाँ क्या रखा था। पकड़कर गाँव में लाया और जब वहाँ भी कुछ हत्थे चढ़ता न दिखाई दिया तो थाने ले गया। थानेदार ने चालान कर दिया। मुकदमा राय साहब के ही इजलास में पेश किया गया।

राय साहब ने दमड़ी को फँसे हुए देखा, तो हमदर्दी के बदले कठोरता से काम लिया। बोले—यह मेरी बदनामी की बात है। तेरा क्या बिगड़ा, साल-छः महीने की सजा हो जायेगी, शर्मिन्दा तो मुझे होना पड़ रहा है ! लोग यही तो कहते होंगे कि राय साहब के आदमी ऐसे बदमाश और चोर हैं। तू मेरा नौकर न होता, तो मैं हलकी सजा देता; लेकिन तू मेरा नौकर है, इसलिए कड़ी-से-कड़ी सजा दूँगा। मैं यह नहीं सुन सकता कि राय साहब ने अपने नौकर के साथ रियायत की।

यह कहकर राय साहब ने दमड़ी को छः महीने की सख्त कैद का हुक्म सुना दिया और उसी दिन उन्होंने खून के मुकदमे में जमानत भी दी।

मैंने दोनों वृत्तान्त सुने और मेरे दिल में यह ख्याल और भी पक्का हो गया कि *सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है। आप बुरे-से-बुरा काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं, तो आप सभ्य हैं, सज्जन हैं, जेन्टिलमैन हैं। अगर आप में यह सिफ़त नहीं तो आप असभ्य हैं, गँवार हैं, बदमाश हैं। यही सभ्यता का रहस्य है!* ❑

एक भारत, श्रेष्ठ भारत! इस नारे के असल मायने क्या हैं?

❑ मनीष सिंह

भारत के राष्ट्रवाद को, भारत के राष्ट्रपिता की निगाह से देखना होगा। मोहनदास के जन्म के वक्त हिमालय से कन्याकुमारी, और अटक से कटक तक फैले इस विशाल भूभाग को अंग्रेजों ने एक किया हुआ था। आधा हिस्सा सीधे नियंत्रण में था, आधा हिस्सा रियासतों के माध्यम से। और गजब राष्ट्र था ये! कोस कोस पर भाषा बदले, घाट घाट पर पानी।

राष्ट्रवाद यूरोप से उधार लिया हुआ शब्द है। योरोपियन नेशनलिज्म की परिभाषा थी-एक क्षेत्र, एक राजा, एक भाषा, एक धर्म, एक दुश्मन। याने सच्चे ब्रिटिश होने का मतलब-अंग्रेजी बोलिये, प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियनिटी का पालन कीजिये, और फ्रांस से नफरत कीजिये। दूसरी ओर सच्चे फ्रेंच होने का मतलब-फ्रेंच बोलिये, कैथोलिक क्रिश्चियन बनिये, ब्रिटिश से नफरत कीजिये।

जाहिर है इन लक्षणों के आधार पर, राजा को अपने समर्थक और विरोधी को पहचानने में आसानी होती थी। ब्रिटिश क्षेत्र में कैथोलिक, गैर अंग्रेजी भाषी संदेहास्पद व्यक्ति था। ऐसे लोग अपने देश मे अल्पसंख्यक थे, सेकेंड क्लास सिटीजन थे। इनकी एथनिक क्लींजिंग की जाती थी। यानी डराकर, मारकर, भगाकर एक क्षेत्र को उनसे पूरा खाली करवा लिया जाता था। जर्मनी में राष्ट्रवाद के उभार के साथ यहूदियों का होलोकॉस्ट दुनिया ने देखा है।

गांधी की निगाह में एकरंगी राष्ट्रवाद का ये दर्शन भारत के अनुकूल था ही नही। पढ़ाई के दौरान ब्रिटेन और फिर दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अल्पसंख्यकों पर पक्षपात देखा था। गोरे और काले के भेदभाव को भी झेला था। तो अफ्रीका में उनका संघर्ष किसी एक समाज के लिए सीमित नही रहा। आंदोलनों में चीनी, तुर्क, अरब, मुस्लिम, हिन्दू सबकी भागीदारी थी।

इसी अनुभव के साथ वे भारत लौटे थे। गांधी के पहले, कांग्रेस की मांग महज होमरूल तक सीमित थी। गांधी ने पूर्ण स्वराज का लक्ष्य बनाया। अर्थात अंग्रेजों को भगाकर एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न राष्ट्र की स्थापना।

मगर राष्ट्र था कहां? कोस कोस पर भाषा बदले, घाट घाट पर पानी। ब्रिटिश ताकत हट जाती, तो देश का बिखरना भी तय था। आम हिंदुस्तानी तो हिन्दू- मुसलमान, सिख-असमी- गुजराती- बंगाली और पंजाबी में बंटा था। ऐसी स्थिति में गांधी ने एक नए राष्ट्रवाद को परिभाषित किया।

ये राष्ट्रवाद एक बहुरंगी गुलदस्ता था। इसे पंजाब-सिंध-गुजरात-मराठा-द्रविण-उत्कल बंग के जंन-गण-मन बना रहे थे। ये स्वराज धर्म और पंथ से निरपेक्ष था, यहां सबको न्याय, समानता और आजादी होनी थी। यहां सबको सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक रूप से बराबरी पर रखा जाना था। यहां सबको भाईचारे से रहना था। ये राष्ट्रवाद का विशुद्ध भारतीय स्वरूप था। ये गांधी का हिन्द स्वराज था।

इस स्वराज के लिए गांधी और भारत ने लम्बी लड़ाई लड़ी। अंग्रेजों से भी, फिरकापरस्तों से भी। बापू अंग्रेजों से तो जीत गए, फिरकापरस्तों से हार गए। देश आजाद हुआ, मगर दो टुकड़े हो गया। गांधी गिरे, तो उनके सीने में गोलियां अंग्रेजों की नहीं, फिरकापरस्तों की थीं। जो बचा था, उसे सम्भाला गया। गणतंत्र लागू हुआ, और इस संविधान को हमने आत्मार्पित किया। गांधी का राष्ट्रवाद, गांधी का स्वराज हमने संविधान की उद्देशिका में लिख लिया, उसे जीने लगे।। दुनिया इस नए किस्म के प्रयोग को दांतों तले उंगली दबाए देखती रही।

यूरोपीयन राष्ट्रवाद ने यूरोप को नृशंस तानाशाह दिए। मास हिस्टीरिया, प्रताड़ना, युद्ध और विनाश के बाद यूरोप ने सबक सीखा। वे समावेशी होते गए। नफ़रतें खत्म की, आज सत्रह देश अपनी सीमाएं मिटाकर एक व्यापार-एक बाजार की नीतियों पर चल रहे हैं। युद्ध से बर्बाद वे देश, राख से खड़े होकर फिर से दुनिया के सिरमौर हैं।

लेकिन उनकी फेंकी हुई राष्ट्रवाद की केंचुल हमे आज लालायित कर रही है। जिस थ्योरी को उंसके जन्मदाताओं ने नकार दिया, उससे हमारा गगन गूंज रहा है। 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' का नारा, झूमते- झूमते, एक धर्म,एक संस्कृति,एक दुश्मन, एक भाषा,एक संगठन,एक चुनाव,एक पार्टी, एक नेता तक पहुंच गया है..। बात यहीं तक नही ठहरी है।

अब उनके हाथ संविधान के गिरेबान से खेल रहे हैं। ❑

नया हुकुमनामा

❑ जावेद अख्तर

किसी का हुक्म है कि सारी हवाएं,
हमेशा चलने से पहले बताएं,
कि इनकी सम्त क्या है.
हवाओं को बताना ये भी होगा,
चलेंगी जब तो क्या रफ्तार होगी,
कि आंधी की इजाज़त अब नहीं है.
हमारी रेत की सब ये फसीलें,
ये कागज़ के महल जो बन रहे हैं,
हिफाज़त इनकी करना है ज़रूरी.
और आंधी है पुरानी इनकी दुश्मन,
ये सभी जानते हैं.

किसी का हुक्म है कि दरिया की लहरें,
ज़रा ये सरकशी कम कर लें
अपनी, हद में ठहरें.
उभरना, फिर बिखरना और बिखरकर फिर उभरना,
गलत है उनका ये हंगामा करना.
ये सब है सिर्फ वहशत की अलामत,
बगावत की अलामत.
बगावत तो नहीं बर्दाश्त होगी,
ये वहशत तो नहीं बर्दाश्त होगी.
अगर लहरों को है दरिया में रहना,
तो उनको होगा अब चुपचाप बहना.

किसी का हुक्म है कि इस गुलिस्तां में,
बस अब एक रंग के ही फूल होंगे,
कुछ अफसर होंगे जो ये तय करेंगे,
गुलिस्तां किस तरह बनना है कल का.
यकीनन फूल यकरंगी तो होंगे,
मगर ये रंग होगा कितना गहरा कितना हल्का,
ये अफसर तय करेंगे.
किसी को कोई ये कैसे बताए,
गुलिस्तां में कहीं भी फूल यकरंगी नहीं होते.
कभी हो ही नहीं सकते.
कि हर एक रंग में छुपकर बहुत से रंग रहते हैं,
जिन्होंने बाग यकरंगी बनाना चाहे थे,
उनको ज़रा देखो.
कि जब यकरंग में सौ रंग ज़ाहिर हो गए हैं तो,
वो अब कितने परेशां हैं, वो कितने तंग रहते हैं.
किसी को ये कोई कैसे बताए,
हवाएं और लहरें कब किसी का हुक्म सुनती हैं.
हवाएं, हाकिमों की मुट्ठियों में, हथकड़ी में,
कैदखानों में नहीं रुकतीं.
ये लहरें रोकी जाती हैं, तो दरिया कितना भी हो
पुरसुकून, बेताब होता है.
और इस बेताबी का अगला कदम, सैलाब होता है.

लोक-विमर्श

सर्वोदय आंदोलन और आगे की दिशा

❑ लक्ष्मी दास

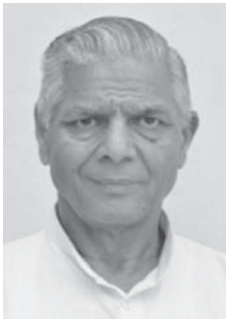

अंतिम व्यक्ति का भला, अर्थात सबका भला। यही सर्वोदय है। यही कल्पना बापू ने की। इसके लिए उन्होंने अपने जीवनकाल में, जितना समय मिला, सबसे अधिक प्रयास किया। उनके बाद आचार्य विनोबा भावे ने इस विचार को आगे बढ़ाया। विनोबा जी ने पहले भूदान तत्पश्चात् ग्रामदान आदि का जो अभियान चलाया, उस दौरान सर्वोदय की परिभाषा की दृष्टि से दो वाक्य प्रसिद्ध हुए : शोषणमुक्त, शासनविहीन, अहिंसक समाज रचना तथा ग्रामदानमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान, अहिंसक क्रांति।

इन दो वाक्यों को केन्द्र बिन्दु मानकर सर्वोदय विचार आधारित समाज रचना का प्रयास किया गया। सर्वोदय विचार के ये सिद्धांत वाक्य बने। सर्व सेवा संघ ने इसको अपना उद्देश्य बनाया और देश भर में सर्वोदय विचार की स्थापना के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किये या जो कार्यक्रम चल रहे थे, उनमें स्वयं को शामिल किया। परिणामस्वरूप सर्व सेवा संघ बड़े-बड़े आंदोलनों का आधार बना। सर्व सेवा संघ की ओर से यह बड़ा पराक्रम हुआ।

जिस ''शोषणमुक्त, शासनविहीन, अहिंसक समाज रचना के उद्देश्य को लेकर सर्व सेवा संघ आगे बढ़ा, उस सर्व सेवा संघ का 2021 में, उस उद्देश्य की उपलब्धि के लिए एजेंडा क्या है? इस पर खुली चर्चा होकर कुछ कार्यक्रम तय करने की आवश्यकता है। जिस ओर, मैं सर्वोदय के साथियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

सर्वोदय विचार मानता है कि हरेक के पास समाज को देने के लिए कुछ न कुछ है। जो जिसके पास है, वह उसका एक अंश समाज को दे। जब हर व्यक्ति, समाज के हर व्यक्ति के लिए, कुछ न कुछ त्याग करेगा तो वर्ग समन्वय होगा। जहां वर्ग संघर्ष, हिंसा को जन्म देता है, वहीं वर्ग समन्वय, अहिंसक समाज के लिए मजबूत नींव रखेगा। वर्ग समन्वय की दिशा में, सर्व सेवा संघ द्वारा कुछ अभिनव प्रयोग करके अपने विचार को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है या फिर व्यापक विचार प्रचार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर वर्गविहीन समाज रचना की लिए वातावरण बनाकर इस उद्देश्य की पूर्ति की ओर आगे बढ़ा जा सकता है। दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों की अपनी-अपनी सीमाएं हैं। ऐसी स्थिति में वर्ग स्वार्थ, सामाजिक हित में बदल सके, इसके लिए क्या-क्या विकल्प हो सकते हैं? यह विचार मात्र चर्चा के लिए नहीं है, बल्कि इस पर चर्चा करके, एक प्रभावशाली कार्यक्रम तय किया जाये, उस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

समाज से भूख मिटाना, अहिंसक समाज की ओर एक आवश्यक कदम है। मैंने कहीं पढ़ा था ''जब तक भूखा इंसान रहेगा, धरती पर तूफान रहेगा।'' बुभुक्षिता किम् न करोति पापम्। इस भूख को मिटाने के लिए सर्वोदय को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने वाले मेरे जैसे कार्यकर्ता क्या कर सकते हैं, हमें दिशा निर्देश की आवश्यकता है। यह एक दिलचस्प घटना है कि पिछले कुछ वर्षों से एक वातावरण बनाया जा रहा था कि देश में गरीबी तो है ही नहीं। गरीब की बात करने वाले झूठे हैं। मजदूर तो ढूंढने पर भी नहीं मिलते। लेकिन कोरोना की महामारी ने सब कुछ उघार कर रख दिया है। कभी आंकड़ा आया कि 80 करोड़ परिवारों को अन्न खिलाया जा रहा है, कभी आंकड़ा आया कि 51 करोड़ मजदूरों को भोजन बांटा जा रहा है। अब माननीय प्रधानमंत्री ने कहा है कि अगले दिसंबर तक 80 करोड़ मजदूरों को पांच किलो चावल या आटा और एक किलो चने, सरकार की ओर से देने की व्यवस्था की जा रही है।

जिस देश में 130 करोड़ (लगभग) की आबादी में 80 करोड़ आबादी ऐसी है, जो पांच किलो मासिक अनाज के लिए सरकार पर निर्भर है, उस देश की जनता की आर्थिक स्थिति क्या है, इसका अंदाजा लगाना कठिन है क्या? इस महामारी में मजदूरों का ऐसा सैलाब आया कि देश का अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्री धरे के धरे रह गये। मजदूर निकल पड़ा। अपने बच्चे और गुदड़ी लेकर। सारे देश ने गरीबों का, मजदूरों का दुःखद और दारुण दृश्य देखा। मैं मानता हूं कि नीति निर्धारकों की समझ में आ गया होगा कि उन्हें वास्तव में करना क्या है, क्या आवश्यकता है? क्या नीति बनानी है और किसके लिए नीति निर्धारण करना है। पैसे वालों के लिए नीति निर्धारण करना है या करोड़ों भूखे नंगे मजदूरों, छोटे मझोले किसानों के लिए? पता नहीं कि नीति निर्धारकों की समझ में यह आवश्यकता आ गयी है या उन्हें और प्रतीक्षा करनी है? इसलिए नीति निर्धारक तो जब जागेंगे तब जागेंगे लेकिन क्या हम तय कर सकते हैं कि 2021 में हमें क्या करना है?

मेरा मानना है कि शोषण मुक्त समाज बनने पर अहिंसक समाज रचना का स्वप्न दूर नहीं रहेगा और जब शोषण मुक्त अहिंसक समाज-रचना हो जायेगी तो शासन की नहीं, आत्मानुशासन की स्थापना होगी। इस तरह सर्वोदय के मूल उद्देश्य 'शोषणमुक्त, शासनविहीन अहिंसक समाज' की स्थापना की जा सकती है।

यदि गांधीजी ने सर्वोदय विचार जैसा समाज बनाने की कल्पना की है। यदि आचार्य विनोबा भावे ने, उस कल्पना को साकार करने के लिए अपना बहुमूल्य समय, शक्ति और जीवन लगाया है, तो यह विचार निश्चित रूप से धरातल पर उतरने वाला विचार है। क्योंकि गांधी-विनोबा झूठ नहीं बोलते। फिर भी यदि गांधी-विनोबा द्वारा पोषित यह विचार धरातल पर नहीं उतर रहा है तो हमें अपनी कमजोरी ढूंढ़नी होगी।

मुझे लगता है कि सभी साथियों और सहयोगियों को धीरेन दा की भाषा में, 'मार्ग खोजन प्रक्रिया' फिर से शुरू करने की आवश्यकता है। सामयिक विषयों पर, देश का ध्यान आकर्षित करना, आवश्यकता पड़ने पर उस समस्या के हल के लिए सहभागी बनना आवश्यक है। लेकिन मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए भगीरथ प्रयास हमारी जिम्मेदारी और मानवता की आवश्यकता है। उसी क्रांति के लिए हमें सक्रिय होना होगा। यदि हम क्रांतिकारी बन सकें, अहिंसक क्रांतिकारी बन सकें तो उत्तम, लेकिन यदि क्रांतिकारी होना दूर की बात लगती हो तो आचार्य विनोबा भावे की भाषा में क्रांति के वाहक की भूमिका तो हमें लेनी ही चाहिए। ❑

सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी सम्पन्न

खादी संस्थाओं का ऋण माफ किया जाय : युद्ध विनाश का रास्ता है, इसे दोनों देश त्यागें

गत 29 जून को सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की वर्चुअल बैठक हुई, जिसमें 13 राज्यों के 22 सदस्यों ने भाग लिया। दिनांक 12-13 जनवरी 2020 को मुबंई में हुई कार्यसमिति तथा 8 जून 2020 को हुई वर्चुअल बैठक की रिपोर्टों की सर्वानुमति से पुष्टि की गयी। बैठक में सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान से संबंधित गठित समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयीं रिपोर्ट में सर्व सेवा संघ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए गांधी दर्शन के प्रचार-प्रसार को लक्षित करते हुए आगामी पांच वर्ष के लिए सत्य, अहिंसा पर आधारित युवा शक्ति के निर्माण का कार्यक्रम बनाने तथा सर्व सेवा संघ और सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के सभी कार्कर्ताओं के प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने का निश्चय करने की सिफारिश की गयी है। रिपोर्ट में सर्व सेवा संघ के पूर्व महामंत्री तथा सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के निवर्तमान अध्यक्ष के बारे में सहानुभूतिपूर्वक पुनर्विचार करने के लिए सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष से निवेदन किया गया है, ताकि मधुर वातावरण का निर्माण किया जा सके और दोनों संगठनों का काम सुचारू रूप से चलाया जा सके। सर्वानुमति से इस रिपोर्ट को स्वीकृत किया गया।

खादी संस्थाओं की ऋण माफी

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के भूतपूर्व अध्यक्ष जयवंत मठकर ने खादी संस्थाओं के संबंध में एक प्रस्ताव पेश किया। इस पर चर्चा के बाद सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव में कहा गया है कि भारत सरकार ने समय-समय पर बड़े उद्योगों सहित अनेक लोगों के हजारों करोड़ के ऋण माफ किये हैं। खादी संस्थाओं को उनके काम के लिए खादी ग्रामोद्योग द्वारा कार्यकारी पूंजी (वर्किंग कैपिटल) तथा अन्य स्वरूप में ऋण दिये थे। इन संस्थाओं ने अभी तक इनसे अधिक ब्याज का भुगतान कर दिया है, फिर भी उनपर ऋण वापसी की तलवार लटकी हुई है। अनेक संस्थाओं को कुर्की-जब्ती का भी नोटिस दी गयी है। इन संस्थाओं ने जितनी रकम का ऋण लिया है, उससे सैकड़ों गुना अधिक मूल्य की सम्पत्ति गिरवी रख दी है।

सर्व सेवा संघ कार्यसमिति ने सरकार से अपील की है कि चूंकि खादी स्वदेशी एवं आत्मनिर्भरता की प्रतीक है, इसलिए इन संस्थाओं के सभी ऋण माफ किये जांय, इनकी संपत्तियों पर कोई भी निर्णय करने से पहले सर्व सेवा संघ से भी चर्चा की जाय क्योंकि इन संपत्तियों पर सर्व सेवा संघ की भी जिम्मेवारी है।

भारत और चीन के बीच तनाव

हाल की घटनाओं के कारण दो पड़ोसी देशों, भारत एवं चीन में तनाव की स्थिति है। दोनों देशों की सेनाओं के अनेक जवानों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। युद्ध किसी समस्या का हल नहीं है। दुनिया ने युद्ध की विभीषिका को देखा है तथा उसके परिणाम भी भुगते हैं। इन अनुभवों के बाद अब कहीं भी युद्ध मानवता के प्रति अपराध लगता है।

1962 के युद्ध के समय सर्व सेवा संघ ने युद्ध के विरुद्ध शंकरराव देव की अध्यक्षता में 'दिल्ली पीकिंग मैत्री यात्रा' की शुरुआत की थी, लेकिन सरकार ने उसे बीच में ही रोक दिया। युद्ध का यह वातावरण दोनों देशों की सरकारों के कारण उत्पन्न हुआ है। चीन या भारत की जनता युद्ध नहीं चाहती। अतः दोनों सरकारों से हमारी अपील है कि बातचीत के लिए मेज पर आयें। इसी में सबकी भलाई है।

कोरोना के कारण सामाजिक कार्यक्रमों से प्रतिबंध हटाने की मांग

कोरोना के कारण सभी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यक्रमों पर प्रतिबंध लगाये गये थे। अब जब कोरोना का फैलाव काफी अधिक हो गया है और संक्रमितों की संख्या 5 लाख को पार कर गयी है, तब धार्मिक कार्यक्रमों पर से प्रतिबंध हटाने तथा यात्रा आदि करने की छूट दे दी गयी है किन्तु सामाजिक कार्यक्रमों पर अभी भी प्रतिबंध जारी रखा गया है।

सर्व सेवा संघ ने इस संबंध में सरकार से अपील करते हुए कहा है कि सभी सामाजिक कार्यों और आयोजनों पर से प्रतिबंध तत्काल खत्म किये जायं। ये सामाजिक काम लोकतंत्र के प्राण हैं। इनके बिना लोकतंत्र कुंठित हो जाता है।

–महादेव विद्रोही
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ

सर्व सेवा संघ प्रकाशन के साथी महेन्द्र कुमार सेवानिवृत्त

सर्व सेवा संघ प्रकाशन के पुराने साथी महेन्द्र कुमार विगत 2 अप्रैल 2020 को लगभग 43 वर्ष की सेवा के बाद सेवानिवृत्त हो गये। 1970 में आचार्य राममूर्ति की प्रेरणा व मार्गदर्शन में उन्होंने खादीग्राम के अनुशासित वातावरण में लगभग 7 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद 26 सितंबर 1977 को वे वाराणसी स्थिति साधना केन्द्र में आये और फिर यहीं के होकर रह गये। जमुई में बहने वाली कील नदी के तट पर बनगांवां (राजघाट) में पैदा हुए महेन्द्र भाई की समर्पित सेवा और अनुशासित जीवन की मिसालें दी जाती रही हैं। महेन्द्र भाई बताते हैं कि खादीग्राम में पढ़ाई के दौरान ही 1974 का आंदोलन शुरू हो गया। जेपी के नेतृत्व में देश भर में हो रहे आंदोलनों के दौर में वे भी विभिन्न धरनों और प्रदर्शनों में शामिल रहे।

खादीग्राम से लेकर वाराणसी तक सर्वोदय आंदोलन की जिन विभूतियों के नेतृत्व व मार्गदर्शन में उन्हें सेवा का अवसर मिला, उनमें आचार्य विनोबा, जेपी, आचार्य राममूर्ति, धीरेन्द्र मजूमदार, दादा धर्माधिकारी, सिद्धराज ढड्ढा, ठाकुरदास बंग, यशपाल मित्तल, कनकमल गांधी, जगदीशचन्द्र भाई, राधाकृष्ण बजाज, बालकोबा भावे, रवीन्द्रनाथ उपाध्याय, डॉ. रामजी सिंह, अमरनाथ भाई, रामचन्द्र राही, डॉ. सुगन बरंठ, राधा बहन भट्ट और महादेव भाई प्रमुख हैं। कोरोना के चलते देश भर में लागू तालाबंदी के बाद 2 जुलाई 2020 को सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविन्द अंजुम की उपस्थिति में प्रकाशन कार्यालय में उपस्थित सभी साथियों के बीच महेन्द्र भाई की लगभग 4 दशक की सेवाओं को याद किया गया और उन्हें भावभीनी विदाई दी गयी। इस अवसर पर सर्व सेवा संघ प्रकाशन की तरफ से उन्हें एक आभार पत्र भी सौंपा गया। इस कार्यक्रम में प्रकाशन के सभी साथी उपस्थित थे।

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

बापू के पदचिह्न

❑ गुलाब खंडेलवाल

बापू के पद-चिह्न-पंक्ति-सी
मिट न सकेगी धरती पर
स्वानुभूतियाँ मेरी,
इनको पढ़-पढ़कर सारा संसार
पायेगा संतोष, शान्ति,
जैसे बापू का स्वर सुनकर,
इन्हीं दीपकों से फैलेंगी
ज्योति अहिंसा की अविकार।

मैं जड़ साधन मात्र,
सत्य की इस चिर-दुर्दम आँधी का
शंख-सदृश जयघोष कर रहा,
मैं पूजन का प्रतनु प्रतीक,
भृत्य भारवाही मैं,
शुभ सन्देश सुनाता गाँधी का,
खींच चला मुख पर आँसू की,
उर-उर पर पत्थर की लीक.

यह वंदन मेरा न कभी,
सारे भारत का, हिन्दी का,
बापू का वंदन यह बापू-सा
सुन्दर हो, शाश्वत हो,
भक्ति-प्रणत हो,
मानवता के गौर भाल की बिंदी का
यह चित्रांकन,
अमर अपर्णा का सत्यान्वेषक व्रत हो

शिव से हो परिणय,
मिट जाय अशिवता के जड़ भाव सभी
कृती-सती का,
धृती-व्रती का पुनः न हो विच्छेद कभी.

गांधी के प्रति

❑ मुकुटधर पांडेय

तुम शुद्ध बुद्ध की परम्परा में आये
मानव थे ऐसे, देख कि देव लजाये
भारत के ही क्यों, अखिल लोक के भ्राता
तुम आये बन दलितों के भाग्य विधाता!

तुम समता का संदेश सुनाने आये
भूले-भटकों को मार्ग दिखाने आये
पशु-बल की बर्बरता की दुर्दम आंधी
पथ से न तुम्हें निज डिगा सकी हे गाँधी!

जीवन का किसने गीत अनूठा गाया

कविताएं

इस मर्त्यलोक में किसने अमृत बहाया
गूँजती आज भी किसकी प्रोज्ज्वल वाणी
कविता-सी सुन्दर सरल और कल्याणी!

हे स्थितप्रज्ञ, हे व्रती, तपस्वी त्यागी!
हे अनासक्त, हे भक्त, विरक्त विरागी!
हे सत्य-अहिंसा-साधक, हे सन्यासी!
हे राम-नाम आराधक दृढ़ विश्वासी!

हे धीर-वीर-गंभीर, महामानव हे!
हे प्रियदर्शन, जीवन दर्शन, अभिनव हे!
घन अंधकार में बन प्रकाश तुम आये!
कवि कौन, तुम्हारे जो समग्र गुण गाये!

सपने में गांधी

❑ अशोक तिवारी

आज रात सपने में गांधी,
घूम रहे थे इधर-उधर।
परेशान और त्रस्त भाव से,
खोज रहे थे सही डगर।
इस धरती की धूल में मिलकर,
सीखा पाठ ख़ुदाई का।
दर्द किया महसूस उन्होंने,
खून बहा जो भाई का।
बात बढ़ेगी और बढ़ेगी,
मिटा नहीं ये बैर अगर।

धू-धू, धू-धू, लपटें उठतीं,
भस्म हुआ सब घर आँगन।
खून ख़राबा मारकाट में,
बुझा-बुझा सा रहता मन।
डूब रहा तिनके का सहारा,
दिखती नहीं है राह मगर।

आसमान में धुआं उठता,
हो-हल्ला है सड़कों पर।
हिंदू राष्ट्र की एक झलक से,
धरती उसकी खून से तर।
त्रिशूलों को घोंप-घोंपकर,
बरपा रहे हैं ख़ूब कहर।

कौन जला है, कौन मिटा है,
और कौन सा है बाकी।
कौन पहनता है खद्दर,
और कौन पहनता है खाकी।
दिखा रहे हैं वर्दी, निक्कर,
मिलकर अपना नाच ज़बर।

तेरी धरती पर गांधी,
'वे' भीख मांगते जान की।
फिक्र उन्हें जिंदा रहने की,
नहीं फिक्र पहचान की।
बँटवारे के बाद आज फिर,
चीख़ रहा है नगर-नगर।

गांधी उठकर राजघाट से,
चले वहीं फिर घर की ओर।
बंद देखकर अपना आश्रम,
रोए बहुत लगाकर ज़ोर।
क्या होगा अब मानवता का,
रहा अगर इनका ये सफ़र।

फ़ासीवादी ख़तरे घर-घर,
सांकल अब खटकाते हैं,
घर के भीतर माँ की कोख़ के,
बच्चे भी मिमियाते हैं।
हिटलर के चेलों को देखो,
फैलाते हैं ख़ूब ज़हर।

गांधी बाबा

❑ दीनदयाल शर्मा

गांधी बाबा आ जाओ तुम
सुन लो मेरी पुकार,
भूल गए हैं यहाँ लोग सब,
प्रेम, मोहब्बत प्यार।

शांति, अमन और सत्य-अहिंसा
पाठ कौन सिखलाए,
समय नहीं है पास किसी के,
कौन किसे बतलाये,
तुम आ जाओ गांधी बाबा,
हो सबका उद्धार ....।

मार-काट में शर्म न शंका,
कैसे हो गए लोग,
कैसा संक्रामक है देखो
घर - घर फैला रोग,
दवा तुम्हीं दो गांधी बाबा,
सबका मेटो खार.....।

बन्दर तीनो मौन तुम्हारे,
इन पर भी दो ध्यान,
कहीं हो जाए, कुछ भी तीनो,
कभी न देते कान,
कहाँ मौन साधक बन बैठे,
मारो इक हुँकार.....!

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार